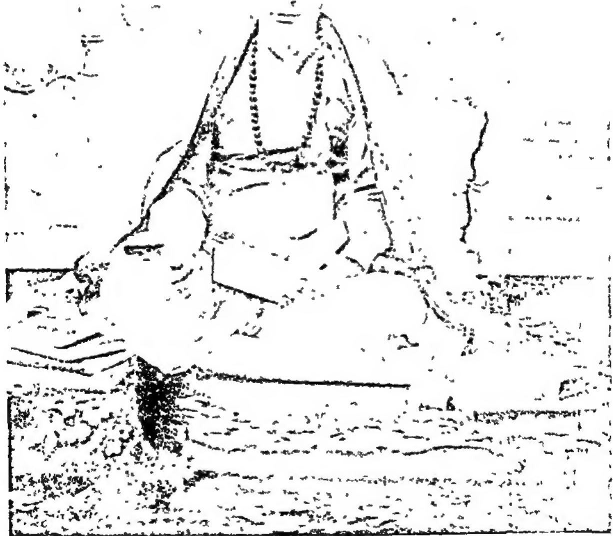


स्वामीब्रह्मानंदजी.



श्रीरमापतये नमः ।

॥ श्रीब्रह्मानंदप्रश्नोत्तरी ॥

इयं

श्रीमत्परमहंसस्वामिब्रह्मानंदेन निर्मिता

सेयं

चंबईनगरे निर्णयसागरमुद्रणालये तेनैव स्वामिना
मुद्रापयित्वा प्रसिद्धिं नीता ।

तृतीयावृत्तिः २०००

संवत् १९७७ शकाब्दाः १८४२ सन १९२१

कीमत ॥।) बारा आना.

Published by Swami Brahmanandjee, of Pushkar, Ajmeer.

Printed by Ramchandra Yesu Shedge
at the "Nrnaya-Sagar" Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay.

प्रस्तावना.



ॐ श्रीमहाशय सर्व सज्जनों को विदित हो कि भारतवर्ष में धर्मविषयक वहुत से संस्कृत वा भाषा कविता ग्रंथ छपे हूये प्रसिद्ध हैं परंतु उन की संस्कृत भाषा वा कविता वा शास्त्रार्थ विषय कठिन होने सें उनसें साधारण लोकों को धर्मरहस्य का ठीक ठीक वोध नहि होता है इस लिये विचारदीपक ईश्वरदर्शन धर्मानुशासन भजनमाला आदि ग्रंथों के वनानेवाले पुष्करतीर्थनिवासी स्वामी ब्रह्मानंदने साधारण लोकों के सुगम वोध के लिये यह ग्रंथ सरल हिंदी भाषामें प्रश्नोत्तर रूपसे निर्माण कर के तथा स्वयं छपाय कर के प्रसिद्ध किया है सो इस के पठनपाठन से सर्व जिज्ञासुजनों को धर्मवोध का लाभ अवश्य लेना चहिये इत्यलम्.

स्वामिब्रह्मानंद.



॥ श्रीरमापतयेनमः ॥

अथ श्रीब्रह्मानन्दप्रश्नोत्तरी प्रारंभः ।

(अथ मंगलम्)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ॥
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

यस्येच्छया समुद्भूतं यत्संकल्पेन चेष्टते ॥
विश्वं यत्र विशेदन्ते तस्मै सर्वात्मने नमः ॥
गुरुशिष्यप्रसंगेन लोकानां हितहेतवे ॥
धर्मतत्त्वं प्रवक्ष्यामि प्रश्नोत्तरविधानतः ॥

शिष्य प्रश्न० हे भगवन् मनुष्य शरीरमें जंकी को क्या कर्तव्य है ॥

गुरु उत्तर० हे शिष्य मनुष्यको व्यवहार और परमार्थ दोनोंका सुधार करना चाहिये क्योंकि

पशुपक्षी तो केवल व्यवहार के अधिकारी हैं और मनुष्य शरीर व्यवहार तथा परमार्थ दोनों का अधिकारी है ॥

प्रश्न० हे भगवन् इन दोनों में पहले किसका सुधार करना चाहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य पहले व्यवहार का सुधार करना चाहिये क्योंकि व्यवहार के सुधार विना परमार्थ का सुधार ठीक नहीं हो सकता ॥

प्रश्न० हे भगवन् व्यवहार का सुधार किस प्रकार सें करना चाहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य अपनी कुल जाति देश काल के अनुकूल व्यवहार का सुधार करना चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् व्यवहार सुधार की क्या रीति है ॥

उत्तर० हे शिष्य बालकपणे में प्रथम विद्या अभ्यास करना चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् कौनसी विद्या का अभ्यास करना चाहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य जिस सें व्यवहार में पूर्ण

लाभ हो और लोकों में प्रतिष्ठा हो तथा साथ साथ धर्म विषय का भी ज्ञान प्राप्त हो ऐसी विद्या का अभ्यास करना चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् स्त्रियों को विद्याभ्यास करना चाहिये कि नही ॥

उत्तर० हे शिष्य लडकों की न्याई लडकियों को भी अवश्य विद्या पढाना चाहिये और सर्व प्रकार के उत्तम गुण सिखलाने चाहिये क्योंकि स्त्रियों के मूर्ख रहने में उनकी संतान भी मूर्ख होती है ॥

प्रश्न० हे भगवन् विद्याभ्यास के अनंतर क्या करना चाहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य जब विद्याभ्यास पूर्ण हो जावे तब अपनी सजाति कुलीन स्त्री से विवाह करना चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् पुरुष का कितने वर्ष की उमरा में विवाह होना चाहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य पुरुष का अठारा वर्ष से लेकर पचीस वर्ष के अंदर विवाह करना चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् स्त्रियों का कितने वर्ष की उमरा में विवाह होना चाहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य बारा वर्ष से लेकर सोला वर्ष के अंदर स्त्रियों का विवाह करना ठीक है ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस से कम उमरा में विवाह करने में क्या हानि होती है ॥

उत्तर० हे शिष्य बल हीन मंद बुद्धि और अल्पायु संतान उत्पन्न होती है ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो फिर धर्मशास्त्रों में आठ दस वर्ष की उमरा में कन्या का विवाह करना क्यों लिखा है ॥

उत्तर० हे शिष्य लोकों को हुशियार करने के लिये लिखा है कि वो ज्यादा जोबन अवस्था तक ढीले न रहें जिससे व्यभिचार होनेका डर होता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् पिताके घर में अविवाहित कन्या के रजस्वला होने में भी तो दोष लिखा है क्योंकि उस वकत संतान होना संभव होता है ॥

उत्तर० हे शिष्य रजोदर्शन तो शरीर का धर्म है स्त्रियों को महीने महीने होता ही रहता है हर

एक महीने में संतान नहीं होती है फकत विवाह में ज्यादा ढीला पण होनेसे रजस्वला होने बाद स्त्रियों में व्यभिचार होना संभव होता है इसी लिये धर्मशास्त्रों में दोष लिखा हुया है असल में कुछ दोष की बात नहीं है॥

प्रश्न० हे भगवन् इस में क्या प्रमाण है कि स्त्रियों का बारा वर्ष से लेकर सोला वर्ष तक विवाह होना चाहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य मनुस्मृति के नवमाध्याय में लिखा है (त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्) अर्थ० तीस वर्ष का पुरुष बारा वर्षकी सुंदर कन्या से विवाह करे इति। तथा निर्णयसिंधु के तृतीय परिच्छेद में लिखा है (त्रिंशद्वर्षो षोडशाब्दां भार्यां विंदेत नग्निकाम्) अर्थ० तीस वर्ष का पुरुष सोला वर्ष की मैथुन योग्यस्त्री से विवाह करे इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् विवाह होने के बाद क्या करना चाहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य विवाह होने के पीछे अपने

शरीर तथा स्त्री पुत्रादिकों के पोषण करने के लिये द्रव्य उपार्जन करने के लिये उद्यम करना चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् वो उद्यम किस प्रकार से करना चाहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य अपनी जाति कुल देश काल के अनुकूल उचित पुरुषार्थ करना चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् सो पुरुषार्थ किस रीति का होना चाहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य जिस में विशेष पराधीनता नहीं होवे और दूसरे जीवोंको क्लेश नहीं पहुंचे तथा अपना नित्य नियम ईश्वर का ध्यान भजन भी बन सके वैसा उद्यम करना चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् धन को उपार्जन करके क्या करना चाहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य पहले तो अपने शरीर माता-पिता और कुटुंब का भरणपोषण करना चाहिये तिस तें उपरांत अपने गुरुजनों की सेवा करनी और परोपकार के काम करने चाहिये तथा कुछ वृद्ध अवस्था के लिये जमा भी रखना चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् आवश्यक कार्य के लिये दूसरे लोकों से करजा लेना चाहिये कि नहि ॥

उत्तर० हे शिष्य करजा लेने की अपेक्षासे अपने घर में कमती खर्च सें निर्वाह कर लेना अच्छा है ॥

प्रश्न० हे भगवन् पीछे वृद्ध अवस्था में क्या करना चाहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य वृद्धपणे में दुनियां के कारवारों सें अलग होकर एकांत स्थान में निवास करके साधु महात्मायों का संग और कथा पुराण आदिका श्रवण तथा ईश्वर का भजन करना चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् क्या यह काम जोवन अवस्था में नहीं करने चाहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य जोवन अवस्था में भी अवकाश के अनुसार अवश्य करने चाहिये क्योंकि मृत्यु काल का कुछ नियम नही है कि किस काल में मृत्यु हो जावे परंतु वृद्ध अवस्था में तो विशेष करके परमार्थ का ही सुधार करना चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् परमार्थ का सुधार किस रीति से होवे है ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर के भजन ध्यान करने सें परमार्थ का सुधार होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर किस को कहते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य सर्व जगत् का कर्ता सर्व जीवों का स्वामी सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् जो परमात्मा पुरुष है सो ईश्वर कहिये है ॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर है यह कैसे निश्चय होवे ॥

उत्तर० हे शिष्य यह जो चराचर जगत् देखने वा सुनने सें आता है इस का कोई आधार अवश्य मानना चाहिये क्योंकि किसी आधार के विना कोई चीज ठहर नही सकती है ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो सर्व जगत् का आधार पृथिवी क्यों नहीं मान ली जावे ॥

उत्तर० हे शिष्य पृथिवी की तो आकाश वायु जल सें पीछे उत्पत्ति होनी वेद में लिखी है तो पृथिवी सब का आधार कैसे हो सकती है किंच

पृथिवी से ऊपर आकाश में भी तारागण सूर्य चंद्रमा आदि वस्ती देखने में आवे है इस लिये पृथिवी संपूर्ण जगत् का आधार नहीं हो सकती है॥

प्रश्न० हे भगवन् तो फिर आकाश को ही सर्व जगत् का आधार मान लेना चाहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य (तस्मादेतस्मादात्मन आकाशः संभूतः) इस वेद वचन में आकाश की भी पृथिवी की न्यांई उत्पत्ति लिखी हुई है अगर जो आकाश को नित्य भी मानें तो भी आकाश जड पदार्थ है इस में चेतनता नहीं है तो जड वस्तु सर्व जगत् का आधार कैसे हो सकती है क्योंकि इन चीजों को किस तरें किस किस ठिकाने पर धारण करूं ऐसी आकाशमें बुद्धि नहीं है ॥

प्रश्न० हे भगवन् बुद्धिहीन जड पृथिवी ने भी तो पर्वत वन मकान आदि धारण कर रखे हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य पृथिवी के पदार्थ तो पृथिवी के साथ चिपके हुये हैं इस लिये धारण हो रहे हैं परंतु आकाश के साथ तो कोई वस्तु चिपकी हूई नहि है इस लिये आकाश सर्व जगत् का आधार नहि हो सकता ॥

प्रश्न० हे भगवन् एक दूसरे की परस्पर आकर्षण शक्ति सें पृथिवी सूर्य आदिक सर्व पदार्थ ठहरे हुये हैं तिन के जुदा आधार मानने की क्या आवश्यकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य आकर्षण शक्ति मानने में भी इतनी दूर से इस पदार्थ का आकर्षण होगा इतनी दूर से इस का होगा इस तरें शोच विचार के पदार्थों की जहां तहां यथायोग्य व्यवस्था करनेवाला और तिन में आकर्षण शक्ति रखनेवाला तो कोई अवश्य मानना पडेगा ॥

प्रश्न० हे भगवन् अनादि काल सें सर्व पदार्थ अपने आपही आकर्षण के अनुकूल ठहरे हुये मानने में क्या हर्जा है ॥

उत्तर० हे शिष्य पदार्थों में बुद्धि और विचार शक्ति नहि है तो फिर वो अपनें आप वहां जाय कर कैसे ठहर सकते हैं यह बात विचारशील पुरुषों को कदापि माननीय नहि हो सकती ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो फिर यह सब पदार्थ किस ने धारण किये हुये हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य जो ब्रह्मांडे सोई पिंडे इस कथन के अनुसार हम लोकोंके शरीर चेतन शक्ति ने धारण किये हूये प्रतीत होते हैं क्योंकि मरण काल में चेतन शक्ति के वियोग सें यह शरीर तुरत गिर जाते हैं तथा वृक्ष भी चेतन शक्ति के निकल जाने सें खडे खडे सूख जाते हैं इस लिये हे शिष्य चेतन स्वरूप जो ईश्वर है उसी के आधार से यह संपूर्ण जगत् स्थिर हो रहा है और उसी के संकल्प सें यह नाना प्रकार के विचित्र जगत् के पदार्थों की सब जगा व्यवस्था बनी हूई हैं और सो सत् चित् आनंदरूप ईश्वर ही संपूर्ण जगत् का आधार है सो तूं निश्चय कर ॥

प्रश्न० हे भगवन् सर्व जगत् का ईश्वर आधार है इस में क्या प्रमाण है ॥

उत्तर० हे शिष्य यजुर्वेद में लिखा है (स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां) अर्थ० सो ईश्वर पृथिवी और अंतरिक्ष को धारण करता भया इति तथा बृहदारण्यक उपनिषत् में भी लिखा है (एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचंद्रमसौ विधृतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावा-

पृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः) अर्थ० हे गार्गि इसी अविनाशी परमात्मा की आज्ञा में सूर्य और चंद्रमा धारण किये हुये स्थिर हो रहे हैं इसी परमेश्वर की आज्ञा में पृथिवी और अंतरिक्ष लोक धारण किये हुये स्थिर हो रहे हैं इति तथा भगवत् गीता में भी लिखा है (गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा) अर्थ० हे अर्जुन मैं पृथिवी में प्रवेश करके अपने वल सें सर्व भूत प्राणियों को धारण करता हूं इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् चेतन स्वरूप ईश्वर सर्व जगत् का आधार भूत है यह वात तो समझ में आई सो ईश्वर का स्वरूप सत् और आनंद रूप कैसे जाना जावे ॥

उत्तर० हे शिष्य सत् उस को कहते हैं जिस का कवी नाश नहि होवे क्योंकि जो ईश्वर का नाश होजावे तो फिर संपूर्ण जगत् किस के आधार पर रहे इस लिये ईश्वर का कवी नाश नहि होता है और उसी की सत्ता सें सर्व पदार्थों में अस्तित्व प्रतीत होता है इस लिये ईश्वर सत् रूप है तथा आनंद रूप इस लिये है कि उसका अंश

रूप जो जीवात्मा है सो कीडी से लेकर ब्रह्मा पर्यंत सब को प्यारा है अर्थात् सब जीव अपने अपने आत्मा को चाहते हैं अपने आत्मा का नाश होना कोई नहीं चाहता है सब को आत्मा परम प्रिय है इस लिये आनंद रूप है ॥

प्रश्न० हे भगवन् स्त्री पुत्र आदिक पदार्थ भी तो प्यारे हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य स्त्री पुत्र धन आदिक पदार्थ आत्मा के लिये प्यारे हैं और आत्मा स्वतः प्यारा है तथा समाधि काल में योगियों को ईश्वर के ध्यान में आनंद का अनुभव होता है और निद्रा में सुषुप्ति अवस्था में सब जीवों को आनंदका अनुभव होवे है तथा स्त्री आदि विषयों में भी ईश्वर के आनंद का ही लेश है इस लिये ईश्वर का स्वरूप आनंद रूप है ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस वार्ता में क्या प्रमाण है ॥

उत्तर० हे शिष्य (सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म, आनंदं ब्रह्मणो विद्वान्, कं ब्रह्म खं ब्रह्म, एष ह्येवानंद याति) इत्यादि वेद की उपनिषदों के वचनों

से सत् चित् आनंद ईश्वर का स्वरूप कथन किया है ॥

प्रश्न० हे भगवन् सत् चित् आनंद यह तीन प्रकार का एक स्वरूप कैसे होवे है ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर का स्वरूप तो चेतन मात्र है और सत् उसका विशेषण है अर्थात् वो सदा अविनाशी है तथा आनंद उस का निज स्वभाव है अर्थात् वो आनंदमय है इस रीति से ईश्वर का एक ही प्रकार का चेतन स्वरूप सत् चित् आनंद रूप जानना चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह बात तो निश्चय हूई कि सत् चित् आनंद स्वरूप ईश्वर है परंतु सो ईश्वर जगत् का कर्ता है यह वार्ता कैसे जानी जावे ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर जगत् का कर्ता तो वेदस्मृति पुराणों में सर्वत्र प्रसिद्ध निरूपण किया है ॥

प्रश्न० हे भगवन् यद्यपि वैदिक मत में तो ईश्वर जगत् का कर्ता प्रसिद्ध है परंतु जैन बौध आदिक लोक ईश्वर को जगत् का कर्ता नहि

मानते हैं तो मेरे चित्त में भी वहुत सी शंका उत्पन्न होती हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य क्या क्या शंका उत्पन्न होती हैं सो तुं कहो ॥

प्रश्न० हे भगवन् अगर ईश्वर जगत् का कर्ता है तो वो इस चराचर जगत् के रचने की उपादान सामग्री कहां सें लाता है जिस सें यह सारा जगत् वनता है ॥

उत्तर० हे शिष्य तूं ने तो ईश्वर को कुंभार के वरावर समझ लिया जो वाहिर से मिट्ठी लाय करके घडे वनाता है ईश्वर शब्द तो सर्व शक्तिमान् का वाचक है इस लिये ईश्वर को जगत् निर्माण करने में किसी दूसरी सामग्री की जरूरत नहि है ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो फिर विना सामग्री इतना वडा चराचर जगत् कैसे रचा जावे है ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर अपने संकल्प मात्र से ही सर्व जगत् को रच लेता है जैसे हम लोकों के स्वप्न में अपने संकल्प से ही सर्व पदार्थ रचे जाते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् स्वप्न के पदार्थ तो सब मिथ्या प्रतीति मात्र होते हैं और यह जगत् तो सब सत्य मालूम होता है ॥

उत्तर० हे शिष्य स्वप्न के पदार्थ हमारे संकल्प के रचे होते हैं इस लिये स्थिर नहीं होते और यह जगत् के पदार्थ ईश्वर के संकल्प के रचे हुये हैं इस लिये यह स्थिर हैं हमारा जीवों का और ईश्वर का संकल्प बराबर नहि हो सकता ॥

प्रश्न० हे भगवन् जीव तो जाग्रत् के सत्य पदार्थों को देख कर उन के संस्कारों सें स्वप्न से मिथ्या पदार्थों की रचना करता है परंतु ईश्वर दूसरे किन पदार्थों को देख कर जगत् की रचना करता है ॥

उत्तर० हे शिष्य जीव तो अल्पज्ञ अल्प शक्तिवाला होन सें ईश्वर के रचे हुये पदार्थों को देख कर तिन के आकारों की रचना करता है परंतु ईश्वर तो सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् सत्यसंकल्प है इस लिये वो अपने संकल्प सें ही सर्व पदार्थों को रचता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् अगर जो यह सर्व पदार्थ संकल्प रूप हैं तो फिर इन सें सर्व प्रकार के व्यवहार कैसे सिद्ध होते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर का संकल्प दृढ होने से यह सब पदार्थ जीवों को सत्य प्रतीत होते हैं और इन सें उन के सब व्यवहार सिद्ध होते हैं परंतु असलमें यह सर्व पदार्थ ईश्वरका संकल्प रूप ही हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस बात का कैसे निश्चय हुया के यह सर्व पदार्थ ईश्वर के संकल्प रूप हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य पहले के ऋषि मुनियों ने तप वा योगाभ्यास कर के ईश्वर का ध्यान किया तो उन को भी यह सर्व पदार्थ संकल्प रूप भासने लगे उन में ईश्वर की शक्ति का अंश आने से उन के संकल्प से भी पदार्थ बनने लगे और वो पर्वतों से पार हो गये आकाश में उडने लगे पृथिवीके नीचे उतर गये बंद मकानों मे सें बाहिर निकल गये जैसा चाहा अपने शरीर को बदल लिया तो उन को निश्चय हो गया कि कोई पदार्थ

कठिन वा सत्य नहि है सवी संकल्प रूप हैं केवल संसारी जीवों को सत्य दीखते हैं और उन से उन के सव व्यवहार होते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस में क्या प्रमाण है कि योगी लोकों को यह पदार्थ संकल्प रूप भासते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य महाभारत योगवासिष्ठ और पुराणों में वहुत से योगियों के इतिहासों से तथा पातंजल आदि योग के शास्त्रों से इस वात का निश्चय होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो मेरे को इस वात का प्रत्यक्ष निश्चय कैसे होवे ॥

उत्तर० हे शिष्य तूं भी योगाभ्यास से निर्विकल्प समाधि का अभ्यास करे तो तेरे को भी प्रत्यक्ष निश्चय हो जावेगा ॥

प्रश्न० हे भगवन् निर्विकल्प समाधि का अभ्यास करना तो बहुत कठिन है ॥

उत्तर० हे शिष्य तो फिर पहले के योगियों के तथा हमारे वचन में विश्वास कर के तूं इस वात का निश्चय कर ले ॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर अपने संकल्प मात्र से जगत् रचता है इस में क्या प्रमाण है ॥

उत्तर० हे शिष्य ऐतरेय उपनिषत् में लिखा है (स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति स इमाँल्लोकानसृजत, वहु स्यां प्रजायेय) अर्थ० उस ईश्वर ने इच्छा की कि मैं जगत् को रचुं और सो इन लोकों को रचता भया ईश्वर ने इच्छा की कि मैं एक से अनेक रूप होवूं इत्यादि वेद के वचनों से इस वार्ता का निश्चय होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् आप के अनुग्रह से यह तो निश्चय हुया कि यह जगत् ईश्वर के संकल्प से रचा हुया है परंतु ईश्वर तो नित्य तृप्त पूर्ण काम है उस को जगत् रचने की क्या आवश्यकता थी उस ने क्यों जगत् को रचा ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर सर्व शक्तिमान् है यह वार्ता सर्वत्र प्रसिद्ध है तो शक्तिमान् को अपनी शक्ति अवश्य काम में लानी चाहिये नहि तो खाली निरर्थक पडी हुई शक्ति व्यर्थ होवेगी लोकों में भी जो पुरुष धनवान् होवे और वो अपने

धन को खावे खर्चे वा दान नहिं देवे तो सो बुद्धिमान् नहिं कहा जावे है प्रत्युत निंदनीय होवे है इस लिये ईश्वर अपनी शक्ति को काम में लाने के लिये लीला रूप जगत् को रचता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर में जगत् रचने का संकल्प क्यों उठता है ॥

उत्तर० हे शिष्य जो चेतन वस्तु होती है उस में स्फुरण शक्ति स्वाभाविकी होती है अगर ईश्वर में स्फुरण शक्ति नहि मानें तो फिर वो पत्थर की न्याई जड मानना पडेगा ॥

प्रश्न० हे भगवन् अगर ईश्वर में स्फुरण शक्ति स्वाभाविकी है तो फिर हमेशां जगत् रचना होती रहेगी कवी प्रलय नहि होवेगी ॥

उत्तर० हे शिष्य जव मनुष्य जो काम शुरू करते हैं उस को जव चाहे बंद कर देते हैं तो क्या ईश्वर मनुष्यों से भी गया बीता है जो जगत् रचना को बंद नहि कर सकता अर्थात् वो जैसा जव चाहे कर सकता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् संकल्प करनेवाला मन तो

पंच महाभूतों का कार्य है तो मन के विना ईश्वर कैसे संकल्प कर सकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य जीव का संकल्प तो मन के द्वारा होता है और ईश्वर का संकल्प स्वतः स्फुरण शक्ति से होता है जो संकल्प करनेवाले जीवों के मन को वना सकता है तो क्या वो आप संकल्प नहि कर सकता ॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर विना मनके संकल्प करता है इसमें क्या प्रमाण है ॥

उत्तर० हे शिष्य कृष्ण यजुर्वेद की श्वेताश्वतर उपनिषत् में लिखा है (अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः) अर्थ० ईश्वर के हाथ नहि पकडता है पैर नहि दौडता है नेत्र नहि है देखता है कान नहि हैं सुनता है इसी प्रकार ईश्वर का मन नहि है परंतु संकल्प करता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जगत् की रचना किस प्रकार से होती है ॥

उत्तर० हे शिष्य वेदांत सांख्य न्याय आदि

शास्त्रों में जगत् सृष्टि के वहुत से प्रकार लिखे हैं परंतु साधारण प्रकार यह है कि ईश्वर के संकल्प से प्रथम आकाश उत्पन्न होवे है फिर आकाश से वायु वायु से अग्नि अग्नि से जल और जलसे पृथिवी उत्पन्न होवे है फिर इन पांच महा भूतों से जीवों के सूक्ष्म और स्थूल शरीर तथा वाहिर के सव भोग पदार्थ उत्पन्न होते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् आपने कहा कि ईश्वर लीला विहार के लिये जगत् रचता है तो संसार में तो वहुत से जीव रोगी दुःखी दरिद्री नरकगामी देखने सुनने में आते हैं तो जीवों को दुःखी कर के अपनी लीला करनी यह क्या ईश्वर की बुद्धि मानी हुई ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर किसी को दुःख नहि देता है जैसे पिता अपने पुत्रों के सुख के लिये मकान धन स्त्री आदि सामग्री संचय करता है तैसे ही ईश्वर भी अपने पुत्र रूप जीवों के लिये संपूर्ण जगत् की सामग्री सुख रूप ही निर्माण करता है॥

प्रश्न० हे भगवन् यह कैसे जाना जावे कि ईश्वर जीवों के सुख के लिये जगत् रचता है ॥

उत्तर० हे शिष्य सब जीवों के शरीरों में प्रायः पांच ज्ञान इन्द्रि देखने में आती हैं और बाहिर जगत् में तिन पांचो इन्द्रियों के लिये पांच विषय बने हुये हैं तिनमें भी फिर एक एक विषय हजारों किसम का रचा हुया है इस लिये ठीक मालूम पडता है कि ईश्वर ने जीवों के सुख के लिये सब पदार्थ रचे हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् जो ईश्वर ने जीवों के सुख के लिये ही सब पदार्थ रचे हैं तो फिर विषय भोगने वाले पापी क्यों समझे जाते हैं और वो नरक में क्यों गिराये जाते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य विषय भोगने में जीव पापी नहीं होता परंतु जब ईश्वर की मर्यादा को उल्लं-घन करके विषयों का सेवन करता है तब वो अ-वश्य दुःख वा दंड का भागी है जैसे मिष्टान्न भो-जन सुख के लिये है परंतु जो मर्यादा से अधिक भोजन किया जावे तो वह हानिकारक हो जाता है तैसे ही अनीतिसें विषय भोगने से जीव दंड वा दुःख का भागी होवे है इस लिये ईश्वर पापी जीवों को रोग वा नरक आदि का दंड देता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् पापी जीवों को दंड देने सें क्या लाभ होता है ॥

उत्तर० हे शिष्य दूसरे जीवों को शिक्षा मिलती है और पापियों के पाप धोये जाते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् जब जीव ईश्वर के परतंत्र है और ईश्वर की प्रेरणा से शुभाशुभ कर्म करता है तो फिर उस को दंड देना कैसे ठीक हो सकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य जीव सर्वथा ईश्वर के परतंत्र नहि है कर्म के फल को भोगने में परतंत्र है परंतु कर्म करने में जीव स्वतंत्र है जैसे जो बाण हाथ से छूट गया उस के रोकने में पुरुष परतंत्र है परंतु आगे फिर बाण छोडने में पुरुष स्वतंत्र होता है अगर जीव सर्वथा पिछले कर्मों के परतंत्र होवे तो फिर यहां कुसंग सें कोई बिगडे नहि और सत् संग से कोई सुधरे नहिं परंतु बिगडते सुधरते देखने में आते हैं इस लिये जीव सर्वथा ईश्वर के वा पिछले कर्मों के अधीन नहि है किंतु प्रमाद से किये हुये पहले पाप कर्मों को भी जप

तप आदि रूप प्रायश्चित्त कर के हटा सकता है जैसे प्रजा के लोक कोई वातों में तो राजा के अधीन होते हैं और अपने घर के कामों में स्वतंत्र होते हैं तैसे ही जीव ईश्वर के अधीन हूया भी आगे कर्म करने में स्वतंत्र है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जीवों को पाप कर्म करने में कौन प्रेरणा करता है ॥

उत्तर० हे शिष्य जीव का अज्ञान प्रमाद कुसंग और पिछला अभ्यास प्रेरणा करता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो फिर जीव के क्या अधीन है ॥

उत्तर० हे शिष्य जीव ज्ञान को सीख कर प्रमाद के परित्यागपूर्वक सत् संग करने से उस अभ्यास के कमती होने से पाप कर्मों से हट सकता है इसी लिये जीव को वेदशास्त्रों का उपदेश किया जाता है अगर जीव सर्वथा परतंत्र होवे और पापसे नहि छूट सके तो फिर उसको उपदेश करनेवाले सर्व शास्त्रकार तथा आचार्य गुरु सव मूर्ख सिद्ध होवेंगे इस लिये जीव कर्म

करने में स्वतंत्र है और पाप कर्म करने सें दंड का भागी होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् सब लोक जानते हैं कि पाप करना बुरा है और वो उस को छोडना भी चाहते हैं परंतु फिर छोड नहिं सकते इसका क्या कारण है ॥

उत्तर० हे शिष्य इस में पुरुषार्थ की न्यूनता ही कारण है पूर्ण पुरुषार्थ करने सें जीव अवश्य पाप कर्म को छोड सकता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् यदि पूर्ण पुरुषार्थ करने पर भी फिर पर वश पाप कर्म हो जावे तो उस में क्या कारण समझना चाहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य पूर्ण पुरुषार्थ करने सें भी जो लाभकारी नहि होवे तो फिर उस में पिछली कर्म गति प्रबल समझनी चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् पिछले प्रारब्ध कर्म प्रबल होते हैं किंवा यहां का पुरुषार्थ प्रबल होता है ॥

उत्तर० हे शिष्य कोई जगा पिछले कर्म बलवान् होते हैं और किसी जगा पुरुषार्थ बलवान्

होता है सो जहां पूर्ण रीति से पुरुषार्थ करने से लाभकारी नहि होवे तो वहां पिछला रोधक कर्म प्रवल जानना चहिये और जहां पूर्ण पुरुषार्थ करने से कार्य सिद्ध हो जावे तो वहां यहां का पुरुषार्थ वलवान् जानना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् पिछले विरोधी वलवान् कर्मके जीतने का भी कोई उपाय है कि नहिं ॥

उत्तर० हे शिष्य शास्त्रोक्तरीति से युक्तिपूर्वक वार वार हठ से शुभ पुरुषार्थ करने से पिछले वलवान् कर्म को जीव जीत सकता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जगत् में जीव सुखी अधिक हैं कि दुःखी अधिक हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य रोगी तथा नारकी जीवों को छोड कर सव जीव सुखी हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह कैसा जाना जावे कि सव जीव सुखी हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य कोई जीव भी अपना मरना नहि पसंद करता है इस लिये मालूम होता है कि वो सुखी हैं अगर ठीक जीव दुःखी होते तो कोई एक घडी भर भी जीना नहि चाहता ॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर ने ब्राह्मण चांडाल धनी दरिद्री हाथी गधा इत्यादि ऊंच नीच जीव क्यों रचे हैं इस में तो ईश्वर में विषमता और निर्दयता आदि दोषकी प्राप्ति होती है ॥

उत्तर० हे शिष्य अगर ईश्वर सर्व जीव बरावर रच देता तो जगत् का व्यवहार कैसे चल सकता कोई किसी का काम नहि करता कोई किसी को पूछता नहि सर्व जगत् के व्यवहार वंद हो जाते इस लिये नीच ऊंच जीव बनाने की आवश्यकता थी ॥

प्रश्न० हे भगवन् निर्दोष किसी जीव को नीच बना दिया विना गुण किसी को ऊंच बना दिया यह क्या ईश्वर की न्यायपरायणता हुई ॥

उत्तर० हे शिष्य प्रथम तो नीच ऊंच जीव बनाये विना जगत् की व्यवस्था ही नही हो सकती सब को बरावर बनाने से तो उलटी बनानेवाले की मूर्खता सिद्ध होती कि जिस से कुछ जगत् का व्यवहार ही नहीं हो सकता इस लियें ईश्वर की येही चतुराई है कि सब को बराबर नहि बनाया

और वात तो छोड दो अगर फकत ईश्वर सब का मुख या वाणी एक सी वना देता तो जगत् में कैसे गडवड मच जाती इस लिये हे शिष्य ऊंच नीच जीव वनाने वहुत ठीक है इस मे कुछ ईश्वर में राग द्वेष की प्राप्ति नहि हो सकती क्यों कि जैसे मनुष्य के शरीर में मस्तक उत्तम है और पैर नीच प्रतीत होते हैं परंतु शरीर के व्यवहार में यह दोनों आवश्यक हैं और अपने अपने काम में दोनों उत्तम हैं मस्तक के वनाने में कुछ राग नहि प्रतीत होता है और पैरों के वनाने में कुछ द्वेष नही मालूम होता फकत व्यवस्था के लिये यह वनाये गये हैं इसी प्रकार हे शिष्य संपूर्ण जीवों में वा जगत् के पदार्थों में व्यवस्था के लिये ईश्वर ने जो ऊंच नीचपणा रखा है सो वहुत ठीक है और दूसरी वात यह है कि जीवों में ऊपर की दृष्टि से ऊंच नीच पणा प्रतीत होता है परंतु विचार दृष्टि से सव जीव वरावर ही हैं क्योंकि भूख प्यास शीत उष्ण निद्रा भय राग द्वेष रोग मरण आदि धर्म सव जीवों में वरावर ही देखने में आते हैं और विषय सुख का भी सव

को बराबर ही अनुभव होता है फकत ऊपर की सामग्री में भेद प्रतीत होवे है जो देवतायों को अमृत पान से वा मनुष्यों को मिष्टान्न भक्षण करणे से तृप्ति होवे है वोही पशु पक्षियों को तृण घास फल फूल भक्षण सें होवे है तथा जैसे देवतायों को अप्सरायों के आलिंगन से और मनुष्यों को सुंदर स्त्रियों के आलिंगन से आनंद का अनुभव होवे है तैसे ही श्वान शूकर आदि को अपनी कूकरी शूकरी आदि के आलिंगन करने से अनुभव होवे है केवल जीवों के बाहिरले साधनों में फरक मालूम देता है परंतु अंदर से सब जीवों को सुख दुःख का बराबर अनुभव होता है॥

प्रश्न० हे भगवन् जो सब जीव बराबर हैं तो फिर गरीब लोक धनी होना क्यों चाहते हैं॥

उत्तर० हे शिष्य धनी लोक भी तो अपने सें ज्यादा धनी के बराबर होना चाहते हैं तथा काम क्रोध लोभ मोह निद्रा भय सब जीवों में बराबर ही हैं इस लिये ईश्वर में नीच ऊंच जीवों के रचने में कुछ विषमता आदि दोष नहि हो सकते हैं किंच हे शिष्य ईश्वर अपनी लीला के लिये

नीच ऊंच सृष्टि रचने में स्वतंत्र है उस में ईश्वर को किसी प्रकार का दोष लगाना केवल मूर्खता है जो काम आवश्यक व्यवस्था के लिये किया जाता है वो कवी दोष नहि गिना जाता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् पूर्वोक्त रीति सें पापी जीवों को दंड देने सें और धर्मात्मा जीवों को सुखी करनेसें तो ईश्वर भी राग द्वेषवाला सिद्ध होवेगा ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर में राग द्वेष कदापि नहि हैं केवल अज्ञानी जीवों की दृष्टि में ईश्वर में राग द्वेष प्रतीत होते हैं परंतु यथार्थ में उस को कोई दोष स्पर्श नहि करता है जैसे लोकों की दृष्टि में सूर्य बादल से ढका हुया दीखता है परंतु सूर्य को कदापि बादल ढाक नहि सकता है क्यों कि सूर्य मंडल तक बादल नहीं जा सकता है और जावे भी तो दूर से ही पिगल जाता है तैसे ही अज्ञानी जीवों की दृष्टि से ईश्वर में राग द्वेष प्रतीत होते हैं यथार्थ में ईश्वर को कोई दोष स्पर्श नहि कर सकता है जैसे पिता अपने मूर्ख-पुत्र को शिक्षा के लियें दंड देता है तो वो कुछ द्वेष भाव से नहि देता है तथा गुणवान् पुत्र का

आदर करता है तो कुछ राग से नहि करता है किंतु उस के गुण के सबब से करता है तैसे ही ईश्वर में भी समझलेना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् जीवों के साथ ईश्वर का किस प्रकार का संबंध है ॥

उत्तर० हे शिष्य पिता पुत्र का संबंध है अर्थात् ईश्वर पिता है और जीव तिस के पुत्र हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् शास्त्रों में तो जीव को ईश्वर की अंश रूप लिखा है तो पुत्र कैसे हुया ॥

उत्तर० हे शिष्य अंश और पुत्र एक ही बात है क्योंकि पुत्र पिता की अंश रूप ही होता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जब ईश्वर ने अपने संकल्प से सर्व जगत् निर्माण किया है तो इस जगत् का उपादान कारण ईश्वर की शक्ति हुई सो ईश्वर की शक्ति ईश्वर से अभिन्न ही है सो भी चेतन स्वरूप ही हूई तो फिर चेतन सें यह जड रूप जगत् कैसे उत्पन्न हो गया ॥

उत्तर० हे शिष्य कार्य जो होता है सो कारण जैसा ही होना चहिये यह नियम नहि है अगर

कारण स्वरूप ही कार्य होवे तो फिर उस का नाम कार्य क्यों पडे जैसे गाय भैंस घास खाती हैं और उस का दूध वन जाता है दूध को वछडा पीता है तो उस से उस के शरीर में हाड़ मांस की वृद्धि होती है पुरुष का वीज पानी जैसा होता है उस में से हाड मांस लोहु मज्जा वाला शरीर वन जाता है तथा वट का वीज वहुत छोटा होता है उस में कितना वडा वृक्ष वन जाता है तथा सांख्य कौमुदी में लिखा है (प्रकृति स्वरूपं विरूपं च) अर्थात् कार्य जो होता है सो कारण के सदृश और विसदृश भी होता है इस लिये हे शिष्य यह जगत् जड चेतन दोनों रूप का देखने में आता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् ऊपर जो दृष्टांत में कहे दूध वीर्य वट वीज इन में तो सूक्ष्म परमाणु होते हैं वो ही पीछे वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं परंतु ईश्वर के संकल्प में तो कोई परमाणु नहि होते हैं तो फिर इतना वडा जगत् संपूर्ण कैसे उत्पन्न हो जाता है ॥

उत्तर० हे शिष्य येही तो ईश्वरका ईश्वरपणा

है अगर वो जीवों की न्यांई कुछ सामग्री लेकर वस्तु बनावे तो फिर उस का सर्वशक्तिपणा क्या होवे फिर तो वो भी जीवों की बराबर हो जावे देखो आकाश के परमाणु नहि हैं परंतु उस में से वायु अग्नि जल पृथ्वी सब परमाणुवोंवाले पदार्थ उत्पन्न होते हैं भूत प्रेत देवता योगी लोक भी विना सामग्री केवल संकल्प सें ही अपने केई शरीर बना लेते हैं देखो नरसिंह अवतार में माता पिता के वीर्य के विना ही केवल संकल्प से नरसिंह का शरीर बन गया था सौभरी ऋषि ने योग बलसे अपने पचास शरीर बना लिये थे कृष्णजी ने भी रासलीला के समय जितनी गोपियां थी उतने अपने शरीर बना लिये थे द्रोपदी के वस्त्र विनासूत बढ गये थे कर्दम ऋषि ने अपने संकल्प से विमान बना लिया था इत्यादि अनेक इतिहास महाभारत भागवत आदिक पुराणों में प्रसिद्ध हैं तो हे शिष्य फिर साक्षात् ईश्वर अपने संकल्प से जगत् बना लेवे तो इस में क्या आश्चर्य की बात है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जब ईश्वर का संकल्प ही जगत् का कारण हुया और सो संकल्प ईश्वर से

अभिन्न है तो सर्व जगत् ईश्वररूप ही हूया तो फिर भला बुरा ब्राह्मण चांडाल सती वेश्या पाप पुण्य सब कुछ ईश्वर ही हूया तो फिर ईश्वर शुद्ध निर्मल निरंजन कैसे रहा उस ने अपने आप को जगत् रूप हो कर विगाड लिया यह क्या वुद्धिमानी हुई ॥

उत्तर० हे शिष्य पहले तो ईश्वर की सृष्टि में कोई बुरी चीज नहि है सब चीज किसी न किसी प्रयोजन की है केवल विना विचार के तुम को कोई कोई बुरी दीखती है क्योंकि तुम को संपूर्ण पदार्थों के संपूर्ण गुणोंका संपूर्ण ज्ञान नहि है और दूसरी बात यह है कि जो पुरुष जिस चीज को बनाता है वो उसका स्वरूप नहि हो जाता है जैसे मकडी अपने पेट से जाला तनती है परंतु सो आप जाला रूप नहि हो जाती है तैसे ही ईश्वर भी जगत् के पदार्थों सें असंग निर्लेप हैं किंच हे शिष्य यह जगत् के पदार्थ जो ईश्वर की दृष्टि में सत्य होवें तो इन से ईश्वर दूषित हो जावें परंतु जब यह संपूर्ण जगत् ईश्वर का संकल्प मात्र है तब उस को यह कुछ लिपायमान नहि

कर सकता है जैसे एक पुरुष स्वप्न में भयानक पदार्थों को देख कर चिल्लाता बरडाता है परंतु जो उस के पास दूसरा जागता हुया पुरुष बैठा है उस को वो सब मिथ्या मालूम देता है तैसे ही अज्ञान रूप निद्रा में सोते हुये जीवों को यह सब जगत् भला बुरा उत्तम नीच सुख दुःख रूप प्रतीत हो रहा है परंतु ईश्वर को यह सब मिथ्या मालूम दे रहा है इस लिये उस को कोई पदार्थ दूषित नहिं कर सकता वो सदा हि शुद्ध निर्मल निरंजन रहता है किंच हे शिष्य जो वस्तु अवयववाली साकार होवे है वोही किसी से दूषित हो सकती है और ईश्वरका स्वरूप तो निराकार अव्यक्त है तो उसको किसी पदार्थका कैसे लेप हो सकता है देखो जैसे आकाश में रेता धूलि धूप वृष्टि सुगंध दुर्गंध सबी पदार्थ रहते हैं परंतु वो किसी से लिपायमान नहिं होता तो ईश्वर तो आकाश से भी सूक्ष्म वस्तु है तो उसको कोई कैसे लिपायमान कर सकता है इस लिये हे शिष्य ईश्वर तो सर्वदा काल निरंतर निर्मल शुद्ध निरंजन

ही है केवल विना विचारे अज्ञानी जीव उस में दोष कल्पना करते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस में क्या प्रमाण है कि ईश्वर सब से निर्लेप है ॥

उत्तर० हे शिष्य कठ उपनिषत् में लिखा है (सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः। एकस्तथा सर्वभूतांतरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः) अर्थ० जैसे सूर्य अपनी ज्योति से सर्व लोकों के नेत्रों में रहता है परंतु तिन नेत्रों के काणे अंधेपणे आदि दोषों से लिपायमान नहीं होता तैसे ही सर्व भूतप्राणियों के अंदर में एक ही परमात्मा व्यापक है परंतु तिन के दुःख सुख से सो लिपायमान नहि होता है क्योंकि वो सब से असंग है इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह जगत् तो सर्व शास्त्रों में अनादि लिखा हुया है तो आप कैसे कहते हो कि ईश्वर ने निर्माण किया है ॥

उत्तर० हे शिष्य शास्त्रों में जो जगत् अनादि लिखा है सो प्रवाह रूप से अनादि लिखा हुया है

स्वरूप से अनादि नहि है क्यों कि जो वस्तु कार्य रूप होती है वो अनादि कभी नहि हो सकती सो यह संपूर्ण जगत् बना हूया कार्य रूप दीखता है इस लिये यह अनादि नहिं हो सकता क्यों कि कार्य और अनादि यह दो वार्ता एक पदार्थ में नहिं बन सकती जो कार्य होवेगा सो अनादि नहि होवेगा और जो अनादि होवेगा सो कार्य नहिं होवेगा अनादि उस को कहते हैं जो कबी शुरुआत में बना नहिं होवे और यह जगत् तो पहले बनता और नाश होता चला आया है और अब भी केई नये नये पदार्थ बनते रहते हैं इस लिये परंपरा से जगत् का प्रवाह अनादि है कोई पदार्थ स्वरूप से अनादि नहि है ॥

प्रश्न० हे भगवन् (सूर्याचंद्रमसौ धाता यथा॰ पूर्वमकल्पयत् दिवं च पृथिवीं चांतरिक्षमथो- स्वः) इस वेद मंत्र में लिखा है कि सूर्य चंद्रमा आकाश पृथिवी अंतरिक्ष और स्वर्ग यह सब चीजें ईश्वरने पहले के माफिक बनाई अर्थात् जैसे पहले कल्प मे थी वैसी ही फिर नवीन कल्प के आदि में बनाई तो इस से तो जगत् की रचना अनादि

काल से चली आती मालूम देती है तो आप कैसे कहते हैं कि यह जगत् आदि में बनाया जाता है ॥

उत्तर० हे शिष्य संपूर्ण जगत् पहले आदि मे बनाया जाता है परंतु बीच बीच में इस की प्रलय तथा रचना होती रहती है सो उक्त वेद मंत्र बीच की रचना विषय का है आदि सृष्टि के विषय का नही है ऐसा निश्चय करना चहिये क्यों कि अगर पिछली बनी हूई सृष्टि के माफिक ईश्वर फिर सृष्टि बनाता है तो फिर पिछली सृष्टि के बनानेवाला कोई दूसरा ईश्वर मानना पडेगा इस लिये यह उक्त मंत्र आदि सृष्टि विषय का नही है ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह सृष्टि तो अनादि काल से अपने आप स्वभाव से बनी हूई है फकत इस का आविर्भाव और तिरोभाव ईश्वर करता है ऐसा मानने में क्या हरजा है ॥

उत्तर० हे शिष्य जब ईश्वर आदि सृष्टिकी रचना नही करता तो फिर ईश्वरका ईश्वरपणा ही क्या हूया वो तो फिर आविर्भाव और तिरो-भाव करने में बंदोबस्त करनेवाला कारबारी हूया

स्वतंत्र कर्ता नही हुया और हम पीछे कह आये हैं कि अपने आप कोई चीज बन नही सकती हैं इस लिये ईश्वर के आविर्भाव तिरोभाव करने से पहले सूक्ष्म बीज रूप जगत् का होना मानना ठीक नही है क्योंकि अगर आदि सृष्टि अपने आप स्वभाव से उत्पन्न होती हो तो फिर सृष्टि में कार्यकारण भावका नियम नही होना चहिये अर्थात् अमुक वस्तु अमुक वस्तु से ही बने ऐसा नियम नही होना चहिये किंतु सर्व वस्तु सर्व जगा सर्व कालमें सर्व वस्तु से बन जानी चहिये क्यों कि कोई व्यवस्था करने वाला नही होने से सृष्टि मे कोई नियम नही होना चहिये और सब जगा सृष्टि में नियम देखने में आता है इस लिये अपने आप स्वभाव से सृष्टि की रचना नही हो सकती है ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह पृथिवी जल वायु आकाश पर्वत समुद्र आदि जगत् के पदार्थ अपने आपसे नहि बने हुये हैं यह सर्व ईश्वरने बनाये हैं यह कैसे निश्चय होवे ॥

उत्तर० हे शिष्य कोई भी वस्तु बिनां बनाये

वनती देखने में नहिं आती है तो यह संपूर्ण जगत् विना वनाये कैसे वन सकता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् वर्षा ऋतु में जंगलों में हजारों प्रकारके वृक्ष लता घास उत्पन्न हो जाते हैं तथा मनुष्य पशु पक्षी आदि जीव भी अपने अपने वीज से हमेशां पैदा होते रहते हैं तो किसी दूसरे वनानेवाले की कल्पना करने की क्या जरूरत है ॥

उत्तर० हे शिष्य जंगल में वृक्ष लता आदि के वीज पृथिवी में गुप्त रहते हैं वो वर्षा के जल से फिर वाहिर अंकुर रूप हो कर वृक्ष लता रूप वन जाते हैं उन वीजों का पृथिवी का तथा वर्षा जल का वनानेवाला ईश्वर है इस लिये वो अपने आप से उत्पन्न नहि होते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् पृथिवी जल वीजों का कर्ता ईश्वर है यह वात कैसे निश्चय हो सके है ॥

उत्तर० हे शिष्य जो कार्य होता है उस का कारण अवश्य होता है सो यह जगत् के पदार्थ सब कार्य रूप हैं इन का कर्ता ईश्वर अवश्य मानना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् कार्य को देख कर अदृश्य कर्ता का कैसे निश्चय हो सके है ॥

उत्तर० हे शिष्य जैसे तुमारे परदादा को तुमने अपने नेत्रों सें नहि देखा है परंतु वो जगत् में था कि नहीं था अगर तूं कहे नहि था तो फिर तूं कहां से उत्पन्न भया और अगर तूं कहे वो था तो बिना देखे तूंने कैसे मान लिया अगर तूं कहे कि मैंने अपने शरीर की उत्पत्ति से मान लिया है तो बस इसी तरे जगत् रूप कार्य सें ईश्वर का निश्चय होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् ऐसे तो फिर ईश्वर का भी कोई दूसरा उत्पन्न करनेवाला मानना पडेगा ॥

उत्तर० हे शिष्य सब पदार्थों का एक जगा आखीरी अंत अवश्य होता है जैसे कि जल बूंद से वडा कौन लोटा लोटा से बडा घडा घडे से वडा कूवा कूवा से वडा तालाव तालाव से वडी नदी नदी से वडा कौन समुद्र बस अब समुद्र सें बडा कौन है यह प्रश्न करना उचित नहिं हो सकता क्योंकि सब जलाशयों का समुद्र में आखीरी अंत है इसी प्रकार सब का उत्पन्न करनेवाला

आखीरी ईश्वर है उस से आगे उसके उत्पन्न करने वाला दूसरा नहि है ॥

प्रश्न॰ हे भगवन् इस में क्या प्रमाण है कि ईश्वर का दूसरा उत्पन्न करनेवाला नहि है ॥

उत्तर॰ हे शिष्य कृष्ण यजुर्वेद की श्वेताश्वतर उपनिषत् मे लिखा है (स कारणं करणाधिपाधिपो नचास्य कश्चिज्जनिता नचाधिपः) अर्थ॰ सो ईश्वर सर्व जगत् का कारण है और सर्व जीवों का अधिपति है उस का कोई दूसरा उत्पन्न करनेवाला वा अधिपति नहि है इति ॥

प्रश्न॰ हे भगवन् पूर्वोक्त रीति से अनुमान सें वा वेद प्रमाण से तो ईश्वर का निश्चय होवे है परंतु प्रत्यक्ष प्रमाण से भी ईश्वर का निश्चय हो सके है कि नही ॥

उत्तर॰ हे शिष्य साधारण लोकों को तो ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन नहि हो सके है परंतु योगध्यान से योगी लोकों को ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन होवे है दीर्घ काल पर्यंत हृदय कमल वा भ्रूमध्यमें ध्यान करने सें ईश्वर का ज्योतिःस्वरूप से दर्शन होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस में क्या प्रमाण है कि योगियों को ईश्वर का दर्शन होवे है ॥

उत्तर० हे शिष्य मुंडक उपनिषत् में लिखा है (ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः) अर्थ० ध्यान काल में योगी तिस निष्कल परमेश्वर को देखता है इति । तथा महाभारत में भीष्मस्तुति में भी लिखा है (यं विनिद्रा जितश्वासाः संतुष्टाः संयतेन्द्रियाः ज्योतिः पश्यंति युंजानास्तस्मै योगात्मने नमः) अर्थ०—जिस परमात्मा को निद्रा आलस से रहित और प्राण को जीतने हारे संतोषी जितेन्द्रिय ध्यान करते हुये योगी लोक देखते हैं तिस योगात्मा को मेरी नमस्कार होवे ॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर के प्रत्यक्ष जानने में कोई और भी उपाय है कि नही ॥

उत्तर० हे शिष्य पूर्ण ब्रह्म ज्ञान होने से भी ईश्वर का स्वरूप प्रत्यक्ष अनुभव में आय जाता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् सो किस रीति से आय जाता है ॥

उत्तर० हे शिष्य चराचर जगत् में सब जगा ईश्वर की चेतनता व्याप्त हो रही है सो उस के जानने से ईश्वर का स्वरूप जाना जावे है क्योंकि ईश्वर का स्वरूप चेतन रूप ही है सो यद्यपि साधारण लोकों के लक्ष्य में नही आसकता परंतु ठीक ठीक वेदांत शास्त्र के जानने हारे ज्ञानी पुरुषों की बुद्धि के लक्ष्य में आय जाता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् सो ईश्वर एक है कि बहुत से ईश्वर हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर एक ही है बहुत से ईश्वर होवें तो एक की इच्छा हो कि यह कार्य ऐसा होना चहिये और दूसरे की इच्छा हो कि नहि ऐसा होना चहिये जो दोनों बराबर हुये तो वह कार्य बन नहिं सकेगा और अगर दोनों में से एक की इच्छा पूरी हुई तो दूसरा ईश्वर नहि हुया अगर दोनों की सलाह सें मिल कर कार्य हुया तो फिर परस्पर अपेक्षा वाले होने से दोनों ईश्वर नहि हूये इस लिये हे शिष्य ईश्वर एक ही है ऐसा निश्चय करना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् कोई कहते हैं कि बहुत से

ईश्वर मिल कर के जगत् की रचना करते हैं जैसे सहत की मक्खिया मिल कर के छता वनाती है तो ऐसा मानने में क्या दोष है ॥

उत्तर० हे शिष्य जब जो काम एक जने से नही हो सकता तो उस को बहुत से मिल कर के करते हैं सो पूर्ण शक्ति नही होने से वो ईश्वर नही कहला सकते क्योंकि वैसे तो साधारण लोक भी मिल कर के नहर कूप तालाव पहाड खोद-लेते हैं तो क्या वो सब ईश्वर हो सकते हैं सहत की मक्खियों में भी एक बडा मख्ख राजा होता है उस के बैठने से सब बैठ जाती हैं और उस के उठने से सब उड जाती हैं इस लिये सब का प्रेरक नियंता ईश्वर एक ही समझना चहिये उस के बराबर दूसरा कोई नही है ॥

प्रश्न० हे भगवन् सो ईश्वर सर्वत्र व्यापक है कि किसी एक जगा में रहता है ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर एक जगा आकाश के ऊपर बैठा हुया जगत् की रचना देखता है यह बात नहि है किंतु ईश्वर सर्व जगत् के अंदर बाहिर सर्वत्र व्यापक है क्योंकि ईश्वर की चेतन शक्ति

का अंश संपूर्ण जगत् के चराचर प्राणधारियों में देखने में आता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जैसे सूर्य आकाश में रहता है और उस का प्रकाश सब जगत् में फैला रहता है तैसे ईश्वर की चेतन शक्ति फैली हुई मान लेने में क्या हानि है ॥

उत्तर० हे शिष्य सूर्य मंडल तो साकार और परिच्छिन्न वस्तु है इस लिये एक जगा रह सकता है परंतु ईश्वर का स्वरूप तो निराकार और सर्व व्यापक है इस लिये सो एक जगा पर नही रह सकता ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस में क्या प्रमाण है कि ईश्वर सर्व जगत् में व्यापक है ॥

उत्तर० हे शिष्य यजुर्वेद में लिखा है (पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि) अर्थ० ईश्वर के एक हिस्से में संपूर्ण जगत् के भूत प्राणी हैं और तीन हिस्से ऊपर शुद्ध मोक्ष रूप हैं तथा भगवद्गीता में भी लिखा है (नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः) अर्थ—परमात्मा

का स्वरूप नित्य सर्व व्यापक स्थिर अचल और सनातन है इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् जैन बोध सांख्य आदि शास्त्रों में कोई जगा ईश्वर का खंडन किया है उस का क्या मतलब है ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर करेगा सो होवेगा ईश्वर की कृपा से सब कुछ हो जायगा इस प्रकार लोक ईश्वर के भरोसे हो कर अपने पुरुषार्थ से हीन नही हो जावें इस लिये कर्मों की प्रधानता दिखलाने के लिये ईश्वर का निषेध किया है और कोई स्थूल बुद्धि वाले पुरुष उन का ठीक मतलब नहि समझ कर ईश्वर से विमुख हो जाते हैं परंतु जब वेदांत न्याय योग आदि बहुत से शास्त्र और चारों वेद तथा अनेक स्मृतियां पुराण ईश्वर का पूर्ण रीति से निरूपण करते हैं तो फिर थोडे से विरुद्ध शास्त्रों की बात माननीय नहीं हो सकती ॥

प्रश्न० हे भगवन् अगर जीव अपने पुरुषार्थ से शुभ कर्म करे और ईश्वर को नहि माने तो क्या हानि है ॥

उत्तर० हे शिष्य जिस की कृपा से जीव को मनुष्य शरीर जल वायु भूमि और सुंदर पान भोजन आदि सामग्री मिली है उस के नही मानने से तो जीव कृतघ्नी हो जाता है और फिर उस के जप तप यज्ञ दान आदि सव शुभ कर्म भी निरर्थक हो जाते हैं इस लिये सर्व पुरुषों को सर्व अवस्थायों में जगत् पिता ईश्वर का सहारा लेकर ही पुरुषार्थ सें शुभ कर्मों का अनुष्ठान करना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह तो निश्चय हुया कि इस जगत् का कर्ता ईश्वर एक है और वो सर्व व्यापक है परंतु वहुत शास्त्रों में लिखा है कि ईश्वर जीवों के कर्मों के अनुसार नीच ऊंच योनियां रचता है तो ईश्वर के संकल्प सें यह नीच ऊंच जीव उत्पन्न हुये कैसे निश्चय होवे ॥

उत्तर० हे शिष्य आदि सृष्टि में तो ईश्वर संपूर्ण जगत् अपनी इच्छा से वनाता है और फिर सृष्टि का प्रवाह कर्मों के अनुसार चलता है प्रथम सृष्टि में तो सव जीव योनियों के कर्म साथ ही वनाये जाते हैं और फिर आगे के लिये

सब जीव अपने अपने कर्मों के अधीन उत्पन्न होते हैं जैसे पहले पिता अपने पुत्रों को अपनी तरफ से पालन करता है और पीछे वो अपने कर्मों के अनुसार ऊंच नीच दरजे को प्राप्त होते हैं तैसे ही ईश्वर में भी समझ लेना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् कर्मों के विना ही आदि सृष्टि उत्पन्न होती है इस में क्या प्रमाण है ॥

उत्तर० हे शिष्य बृहदारण्यक उपनिषत् में लिखा है (स स्वयमेवात्मानं द्वेधापातयत् ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तां समभवत् ततो मनुष्या अजायंत सा गौरभवत्ततो गावो-ऽजायंत वडवेतराभवदश्व वृष इतरो गर्दभी-तरा गर्दभ इतरस्तां समभवत् तत एकशफ-मजायताजेतराभवद्वस्त इतरोऽविरितरा मेष इतरस्तां सममेवाभवत्ततोऽजावयोऽजायंतैव-मेव यदिदं किंच मिथुनमापिपीलिकाभ्यस्त-त्सर्वमसृजत) अर्थ० सृष्टि के आदि में एक पुरुष था उस ने अपने शरीर को दो टुकडे किया तो एक पुरुष दूसरी स्त्री बन गई पुरुष ने उस स्त्री से संगम किया तो वहां से मनुष्य उत्पन्न

हुये फिर सो स्त्री गौ रूप वन गई तो पुरुष वृषभ वन गया उनके संगम से गौवां उत्पन्न हूई फिर सो स्त्री घोडी वन गई पुरुष घोडा वन गया स्त्री गर्दभी वन गई पुरुष गर्दभ वन गया तिन के संगम से एक शफ वाले घोडे गधे उत्पन्न हूये स्त्री वकरी वन गई पुरुष वकरा वन गया स्त्री भेड वन गई पुरुष मेंडा वन गया उन के संगम सें वकरी भेडें उत्पन्न हुईं इसी प्रकार जितने कीडी पर्यंत स्त्री पुरुष जीव योनियों के जोडे जगत् में हैं सव उत्पन्न होते भये इति। सो इस सें ईश्वर की इच्छा सेंहि आदि सृष्टिका-होना निश्चय होवे है कर्मों सें नहि ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह तो निश्चय हुआ कि आदि सृष्टि ईश्वर अपनी इच्छा से रचता है परंतु पीछे सें उसमें कर्म लगाये जाते हैं इस में क्या प्रमाण है ॥

उत्तर० हे शिष्य मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में लिखा है (यं तु कर्मणि यस्मिन् स न्ययुंक्त प्रथमं प्रभुः स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः) अर्थ० आदि सृष्टि में जिस जीव को

जिस कर्म में ईश्वर ने जोड दिया वो जीव जगत् में फिर फिर उत्पन्न होता हूया उसी कर्म को करता रहा इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् जब ईश्वर ने ही जीवों को भले बुरे कर्म जोड दिये तो फिर जीव बुरे कर्म करने से सजा क्यों पाता है ॥

उत्तर० हे शिष्य जीवों के कर्म दो प्रकार के हैं एक तो ईश्वर के जोडे हुये और दूसरे स्वयं किये हुये जैसे भूख प्यास शीत उष्ण निद्रा भय काम क्रोध लोभ मोह यह सब ईश्वर के जोडे हूये हैं ॥ और जो ईश्वर की मर्यादा को लंघन कर के जीव प्रमाद से कर्म करता हैं वो उस के स्वयं कर्म कहलाते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् जब काम क्रोध लोभ आदि ईश्वर के जोडे हूये हैं येही तो सर्व पापों के मूल हैं तो फिर जीव का क्या कसूर हुया ॥

उत्तर० हे शिष्य यह मर्यादा से किये हुये पापों के कारण नहि हैं ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन करके मर्यादा से अधिक किये हुये दोष और पाप के हेतु होते हैं जैसे ईश्वर ने सिंह के लिये

मांस का आहार वनाया है और मनुष्य के लिये अन्न का आहार वनाया है अव जो मनुष्य अन्न छोड कर मांस का भोजन करेगा तो ईश्वर का नियम भंग करने से अवश्य दोषी और पाप का भागी होवेगा और जैसे मनुष्य के पीनेके लिये जल दूध वनाया है उस के उपरांत जो जानवरों की चरवी तेल लोहु निकाल कर पीवेगा तो दोषी होवेगा और निद्रा भय काम क्रोध लोभ मोह यह सव शरीर की रक्षा के लिये वनाये हैं अगर मनुष्य सोवे नहीं तो रोगी हो जावे अगर किसी से भय नहि करे तो रात को जंगल वन में जाने सें सिंह व्याघ्र आदि सें मारा जावे काम नहिं हो तो किसी चीज के लिये उद्यम नहिं करे और प्रजा उत्पन्न नहि होवे क्रोध नहि हो तो अपने शत्रु से कैसे वचे और पुत्र शिष्य आदि को शिक्षा कैसे करे लोभ नहि हो तो शरीर पोषण की सामग्री कैसे मिले मोह नहि होवे तो अपने वाल वच्चों का पालन कैसे करे इस लिये हे शिष्य यह सव मर्यादा से किये हुये दोष वा पाप के हेतु नहि होते किंतु मर्यादा से वाहिर किये हुये दोष

के हेतु होते हैं जैसे (निद्रा) दिन रात सोते रहना (भूख) मिष्टान्न आदि आहार सें ज्यादा भोजन करना (भय) थोडी थोडी वात सें डरते रहना कायरपणा रखना (काम) अपने स्त्री धन आदि सें उपरांत दूसरों के स्त्री धन आदि में हाथ डा-लना (क्रोध) क्रोधी स्वभाव से हर एक को गाली दुर्वचन बोलना दुःख देना लडाई फसाद करना (लोभ) जरा जरा सी चीज पर लोभ करना लालच से बुरा काम करना दान पुण्य भोजन वगेरा में कुछ खर्च नहि करना परोपकार का काम कोई नही करना (मोह) किसी स्त्री आदि पर अत्यंत मोहित हो जाना विषयों में दिन रात लंपट हो जाना इत्यादि करने से यह सब दोष और पाप के हेतु होते हैं इस लिये इन को मर्यादा से अधिक नहिं करना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् जब यह ईश्वर ने हि बना दिये तो फिर मर्यादा से बाहिर हो जाने पर भी जीव का क्या दोष है ॥

उत्तर० हे शिष्य जैसे ईश्वर ने पैर चलने को बनाये हैं परंतु ईश्वर यह तो नहिं कहता कि तुम

इन से किसी जीव को कुचल डालो दांत अन्न चवाने को वनाये गये हैं किसी को काट खाने को नहि वनाये हैं मुख बोलने को वनाया है गालियां वकने को नहिं वनाया है इत्यादि यह सव जीव के स्वयं कर्म हैं ईश्वर के लगाये हुये नहि हैं इस लिये इन के करने सें जीव दोष वा पाप का भागी होता है और सजा पाता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो जीव मर्यादा से वाहिर किस की प्रेरणा से चलता है ॥

उत्तर० हे शिष्य यह इस का स्वयं प्रमाद है कुसंग वा अभ्यास की प्रेरणा से ऐसा करता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् इन से वचने का क्या उपाय है ॥

उत्तर० हे शिष्य श्रेष्ठ पुरुषों का संग करना शुभ विद्या का अभ्यास करना हमेशां प्रमाद से बचे रहना याने आगा पीछा सोच समझ के काम करना इन उपायों सें जीव पाप कर्मों से वच सकता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जो जीव हमेशां नीच वा पाप योनियों में पडे हूये हैं कुछ सत् संग आदिक

उपाय नहि कर सकते हैं उन को पाप लगता है कि नहि ॥

उत्तर० हे शिष्य जैसे सिंह व्याघ्र आदि जीव जो स्वभाव सें ही हिंसा करते हैं उस मे उन को कुछ पाप नहीं लगता है क्योंकि उन को ईश्वर ने शुरु से ही वैसा रचा है वो उन का प्रमाद दोष नहि है परंतु जो मनुष्य हिंसा करता है तो उस को अवश्य पाप लगता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जीव तो सब जगा शास्त्रों में अजन्मा अविनाशी अनादि लिखा हूया है तो आप आदि सृष्टि में जीवों की उत्पत्ति कैसे कहते हो ॥

उत्तर० हे शिष्य जीव दो पदार्थों के संयोग से बनता है एक तो चेतन शक्ति और दूसरा अंतःकरण सो ईश्वर के संकल्प सें रचे हुये अंतःकरण के साथ सर्वव्यापक चेतनशक्ति का संबंध मात्र होवे है जैसे नवीन घट के साथ आकाश का संबंध होवे है उस में आकाश की उत्पत्ति नहि होती तैसे ही अंतःकरण के साथ चैतन्य का संबंध मात्र होवे है जन्म नहि होवे है इस लिये

शास्त्रों में जो जीवात्मा को अजन्मा अविनाशी अनादि लिखा है सो ठीक है ॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर पहले उत्तम गुण युक्त सुंदर शरीरों को रचता है और फिर तिन का नाश कर देता है तो यह ईश्वर की क्या बुद्धि मानी है क्योंकि साधारण पुरुष भी जो वस्तु बनाता है तो उस की हमेशां रक्षा करता रहता है तो ईश्वर ऐसा क्यों करता है ॥

उत्तर० हे शिष्य इसका कारण महाभारत में लिखा हूया है कि पहले ईश्वर ने सृष्टि वनाई तव किसीकी मृत्यु नही वनाई तो कुछ काल में बढते वढते जीव संपूर्ण भूमंडल मे भर गये कोई जगा खाली नही रही और महान् कोलाहल मच गया तो ईश्वर ने विचार कर फिर मृत्यु को उत्पन्न किया जो समय समय पर जीवों का नाश करती रहती है सो इस तरे पहलेके जीव नाश होते जाते हैं और दूसरे नवीन जीवों को अवकाश मिलता रहता है ॥ अगर पहले के जीव नही मरें तो फिर पिछले नवीन जीवों को रहने खाने पीने का अवकाश कैसे मिले इस लिये जगत् का प्रवाह

चलाने के लिये पहले शरीरों का नाश करना भी आवश्यक बात है किंच (जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च) इस भगवत् गीता के वचन के अनुसार रोग आदिकारणों सें जीर्ण हूये शरीरों को जीवों से छुडाय कर नवीन शरीर देने में उलटा ईश्वर जीवों पर उपकार करता है इस लिये ईश्वर में किसी प्रकार का दोष लगाना केवल अपनी वेसमझी की बात है ॥

प्रश्न० हे भगवन् आपने पहले कहा कि आदि सृष्टि ईश्वर रचता है और पीछे कर्मों के अनुसार सृष्टि का प्रवाह चलता है सो कर्मों के फल जीवों को कौन देता है ॥

उत्तर० हे शिष्य असंख्यात जीवों के असंख्यात कर्मों के जानने हारा सर्वज्ञ जो ईश्वर है सोई कर्मों के फल को देता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् कोई लोग ऐसा कहते हैं कि जीवों के कर्म अपने आप ही जीवों को फल दे देते हैं ईश्वर की क्या आवश्यकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य कर्म नाम शुभाशुभ क्रिया का है सो क्रिया जड होती है अर्थात् उस मे चे-

तनता वा बुद्धि नहीं होती है तो मुझ को किस ने किस वकत किस निमित्त किया था उस का फल मैं किस को किस वकत देवूं यह ज्ञान कर्मों में नहि हो सकता तो फिर वो अपना फल आप जीवों को कैसे दे सकते हैं लोकों में भी देखने में आता है कि जो कोई पुरुष चोरी वा नौकरी का काम करता है तो उस को चोरी वा नौकरी स्वयं कुछ फल नहीं देती है किंतु उस के जाननेवाला हाकिम व अफसर सजा वा तनखाह देता है तैसे ही कर्म अपने आप कर्मों का फल नहीं दे सकते उन के जाननेवाला सर्वज्ञ ईश्वर ही उन का फल देवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जैसे कोई पुरुष स्वयं विष खाय कर मर जाते हैं जल में डूब कर मर जाते हैं अग्नि में पड कर जल जाते हैं खान पान की गडवड से रोगी हो जाते हैं तो उन को ईश्वर फल देता है यह कैसे निश्चय होवे ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर साक्षात् किसी का हाथ पकड कर उसको कर्मों का फल नहिं देता है किंतु परस्पर आपुस मे जीवों की बुद्धि की

प्रेरणा करने से उन को भला बुरा फल मिल जाता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस में क्या प्रमाण है कि ईश्वर जीवों की बुद्धि को प्रेरता है ॥

उत्तर० हे प्रिय शिष्य बृहदारण्यक उपनिषत् में लिखा है (यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्योंतरो यं सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यंतरो यमयत्येष त आत्मांतर्याम्यमृतः) अर्थ० जो सर्व भूत प्राणियों में रहता हूया सर्व भूत प्राणियों के अंदर है जिस को सर्व भूत प्राणी नहि जानते जिस के सर्व भूत प्राणी शरीर हैं जो सर्व भूत प्राणियों को अंदर से प्रेरणा करता है सोई तुमारा अंतर्यामी ईश्वर है इति । तथा भगवत् गीता में भी लिखा है (ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया) अर्थ० हे अर्जुन सर्व भूत प्राणियों के हृदय में ईश्वर रहता है सोई माया के चक्कर पर चडे हुये सर्व भूत प्राणियों को भ्रमण करावता है इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् जीवों को कर्मों के फल देने में ईश्वर को क्या लाभ है ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर को किसी लाभ की जरूरत नहि है केवल जीवों पर दया कर के उन को कर्मों का फल देता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर तो न्यायकारी है तो वो दयालु कैसे हो सकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर साधारण रीति से तो न्यायकारी है परंतु खास कर के दयालु है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जीवों के कर्मों के अनुसार फल देने से ईश्वर न्यायकारी तो निश्चय होवे है परंतु दयालु कैसे है ॥

उत्तर० हे शिष्य देखो ईश्वर ने जीवों के लिये पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश सूर्य चांद तारे वन पर्वत नदियां फल फूल कपास ऊंन औष-धियां पौंडे वगेरा कैसी कैसी उपयोगी चीजें वनाई हैं इसी से उस का दयालुपणा सिद्ध होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह सव चीजें तो जीवों के

कर्मों के अनुसार बनाई हैं इस में ईश्वर की दया-लुता क्या हूई ॥

उत्तर॰ हे शिष्य यह सब चीजें जीवों के कर्मों सें नहि बनाई गई किंतु ईश्वर ने अपनी तरफ सें जीवों के लिये बनाई हैं ॥

प्रश्न॰ हे भगवन् यह बात कैसे जानने में आवे कि यह सब चीजें ईश्वर ने अपनी तरफ से बनाई हैं ॥

उत्तर॰ हे शिष्य देखो ईश्वर की दो प्रकार की सृष्टि है एक चर और दूसरी अचर तिन में पृथिवी जल अग्नि वायु बन पर्वत वृक्ष फल फूल अनाज यह सब अचर सृष्टि कहिये है और मनुष्य पशु पक्षी कीट पतंग यह सब चर सृष्टि कहाती है तो इन दोनों में पहले अचर सृष्टि उत्पन्न होती है और पीछे चर सृष्टि बनती है क्योंकि अगर पहले ही चर सृष्टि बनाई जावे तो फिर वो चले फिरे कहां और खावे पीवे क्या इस लिये पहले अचर सृष्टि उत्पन्न होती है जब चर से अचर सृष्टि पहले हुई तो फिर चर जीव

तो पीछे से उत्पन्न हूये तो तिन के कर्मों सें अचर सृष्टि कैसे हो सकती है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जगत् के अनादि प्रवाह में सृष्टि से कर्म कर्मों से सृष्टि यह चराचर दोनों अनादि हैं तो आप अचर सृष्टि पहले कैसे कहते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य यह जगत् बनावट सें अनादि नहि है केवल इस का प्रवाह अनादि है यह बात पहले निरूपण कर आये हैं किंच जगत् को अनादि मानने सें भी कार्य कारण भाव तो अवश्य मानना पडेगा जैसे जब जब अनादि प्रवाह में घडा बनेगा तो पृथिवी से बनेगा परंतु पृथिवी मंडल तो घडे से नहिं बन सकता तैसे ही पृथिवी आदि पांच तत्त्वों सें जीवों के शरीर और कर्म बनते हैं परंतु शरीर और कर्मों सें पांच तत्त्व कभी नहि बन सकते इस लिये यह ईश्वर ने अपनी तरफ से ही बनाये हूये हैं जीवोंके कर्मों से नहि बने हूये हैं और जीव इन को हमेशां अपने उपयोग में लाते हैं इस लिये ईश्वर की दयालुता प्रत्यक्ष निश्चय होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् अगर ईश्वर दयालु है तो प्रार्थना करने से सो जीवों के पापों को क्षमा कर देवेगा ॥

उत्तर० हे शिष्य अगर जीव सच्चे दिल से ईश्वर से प्रार्थना करे और फिर आगे को पाप कर्म करना छोड देवे तो ईश्वर अवश्य क्षमा कर देता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस से तो प्रार्थना के भरोसे जीव बहुत पाप करेंगे ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर उन पापों को क्षमा करता है जो भूल सें होते हैं और जो समझ कर प्रार्थना के भरोसे पाप करते हैं वो कदापि क्षमा नहि किये जाते ॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर दयालु है और दया कर के जीवों को कर्मों के फल देता है यह तो मेरी समझ में आगया परंतु ईश्वर तो शांत स्वभाव है तो फिर संपूर्ण जीवों के कर्मों को गिणते रहना फिर उन को फल का हिसाब चुकाते रहना यह बडे फिकर चिंता और विचार के काम में

हमेशां लगे रहने से तो सर्वदा काल ईश्वर चंचल और व्यग्र रहता होगा तो उस को शांति रूप आनंद कैसे रहता होगा ॥

उत्तर० हे प्रिय शिष्य ईश्वर को जीवों की न्यांई कर्मों के गिनने और हिसाव लगाने की जरूरत नहीं पडती क्योंकि जीव तो अल्पज्ञ हैं सो गिण के हिसाव लगाते चुकाते हैं परंतु ईश्वर तो सर्वज्ञ अखंड प्रकाश स्वरूप है इस लिये उस को सर्व पदार्थ हमेशां प्रत्यक्ष रहते हैं जैसें सूर्य को प्रकाश करने में कुछ परिश्रम नहिं पडता क्यों कि वो प्रकाश स्वरूप ही है तैसे ही ईश्वर को भी ज्ञान स्वरूप होनेसे किसी प्रकार की चंचलता वा परिश्रम नहिं पडता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर सर्वज्ञ है यह कैसे जाना जावे ॥

उत्तर० हे शिष्य जो जिस चीज को वनाता है वो अवश्य उस को जानता है जव ईश्वर संपूर्ण जगत् के रचने हारा है तो अवश्य जगत् के सव पदार्थों को जानता है इसी से वो सर्वज्ञ समझना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर सर्वज्ञ है इस में क्या प्रमाण है ॥

उत्तर० हे शिष्य मुंडक उपनिषत् में लिखा है-(यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः) अर्थ० जो ईश्वर सर्वज्ञ है और सर्व को जानता है और जिस का ज्ञानरूप ही तप है इति । तथा भगवत् गीता में भी लिखा है-(वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन । भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन) अर्थ० हे अर्जुन मैं अतीत वर्तमान तथा भविष्यत् सर्व भूत प्राणियों को जानता हूं परंतु मुझको कोई नहि जानता है इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर सर्वज्ञ होने सें सब जीवों के कर्मों को जानता है तो क्या वो जीवों को नित्य उन के कर्मों के फल को वांटता रहता है ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर को नित्य वांटने की आवश्यकता नहि है उस ने अपनी इच्छा से आदि सृष्टि में जैसे सर्व पदार्थों के जुदा जुदा

स्वभाव स्थिर किये हुये हैं तैसे ही कर्मों के फल का भी नियम कर रखा है ॥

प्रश्न० हे भगवन् वो किस प्रकार का नियम है ॥

उत्तर० हे शिष्य जो जो कर्म जीव करता रहता है सो सो सबी उस के अंतःकरण में जमा होते रहते हैं जैसे कपडे में चित्र खिंचते जाते हैं और उन में जो जो कर्म परिपक्क होते जाते हैं उन उन का निमित्त खडा हो कर जीव को फल मिल जाता है जैसे आम का फल जब पक जाता है तब आप ही डाली से टूट पडता है तथा जैसे स्त्री का गर्भ जब नौ महीने का होता है तब आप ही पेट मे दर्द चल कर अपान वायु उस को बाहिर फेंक देता है तैसे ही ईश्वर ने कर्मों के फलके लिये भी उक्त नियम बना रखा है उस को नित्य नई खटपट नहि करनी पडती उस ने सृष्टि के आदि में एक दफे सब नियम बना दिये हैं जैसे जलका नीचे को वहना अग्नि का ऊपर को उठना वायु का टेढा चलना इत्यादि सब जगा समझ लेना ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस में तो जैन मत की बात

सिद्ध हुई कि जीवों के कर्म अपना फल आप ही देते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य हम पहले कह चुके हैं कि कर्मों में चेतनता वा बुद्धि नहि होने सें वो अपने लिये अपना नियम नहि बना सकते जैसे घडी की सूई जब घंटे के अंक पर आती है तो आप ही घंटा बज जाता है परंतु उस की बनावट का हिसाब रखने वाला तो कोई अवश्य दूसरा चेतन पुरुष होता है तैसे ही हे शिष्य कर्म परिपक्क होने पर जीव को फल देते हैं परंतु इस नियम के बांधनेवाला ईश्वर अवश्य निश्चय करना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् अनादि काल सें सर्व पदार्थों के नियम अपने आप ही बंधे हुये मानने में क्या हर्ज़ा है ॥

उत्तर० हे शिष्य यह तुमारी बात बिलकुल बे समझी की है हम पहले ही कह आये हैं की बिना बनाये आपने आप कोई नियम नहि बन सकता है जहां तुम को कोई चीज बिना बनाये दीखे तो उस की परंपरा से खोज करने से तुम को कोई अवश्य उसके बनानेवाला मिल जायगा ॥

प्रश्न० हे भगवन् जैसे वर्षा का जल गिरा और वृक्ष हो गया इस में चेतन कर्ता की क्या आवश्यकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य केवल वर्षा के जल से वृक्ष नहि वन जाता ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो फिर उस में दूसरा क्या कारण है ॥

उत्तर० हे शिष्य उस में वहुत से कारण हैं जैसे कि पृथिवी पृथिवी की उपजावन शक्ति वृक्ष का वीज वीज में उद्भव शक्ति अंकुर निकलने में अवकाश रूप आकाश अंकुर को ताजा रखने के लिये वायु और वृक्ष के जीते रहने के लिये उस के अंदर चेतन जीव शक्ति इत्यादि कारणों से एक वृक्ष वनता है और इन सव पदार्थों के रचनेवाला ईश्वर है यह वात पहले सिद्ध कर चुके हैं तो हे शिष्य परंपरा सें सर्व पदार्थों का वा सर्व नियमों का वनानेवाला सर्वज्ञ ईश्वर को ही निश्चय करना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् आपने पहले कहा कि ईश्वर जीव के कर्मों के अनुसार फल देता है सो किसी

सेठ के घर मे पाप कर्म के फल भोगने के लिये चोरी होगई तो फिर चोर को दंड क्यों होना चहिये क्यों कि वो तो सेठ के पाप कर्म की प्रेरणा से चोरी हुई है ॥

उत्तर० हे शिष्य भगवत् गीता में लिखा है कि (गहना कर्मणो गतिः) अर्थ० कर्मों की गति वडी गहन है इति । इस वचन के अनुसार वो चोरी सेठ और चोर के पूर्व जन्म के लेन देन के सबब से हुई कि चोर ने नई चोरी करी इस बात का निश्चय करना मनुष्य की बुद्धि से वाहिर है ॥

प्रश्न० हे भगवन् अगर चोर ने पूर्व जन्म के बदले में चोरी की और वो पकडा गया और फिर राजा ने उस को दंड दिया तो यह दंड क्यों मिला ॥

उत्तर० हे शिष्य इस में उस चोर का कोई दूसरा कर्म दंड दिलानेवाला समझना चहिये जिस ने उस को इस निमित्तसे दंड दिलाया अथवा राजा ने उस को नया दंड दे कर उस से नवीन कर्मबंधन किया ॥

प्रश्न० हे भगवन् राजा जो दंड देता है सो न्याय के लिये देता है उस का चोर आदिकों के साथ कर्म बंधन कैसे हो सकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य राजा का प्रजा के ऊपर राज्य करने का स्वार्थ होता है वो प्रजा से कर लेकर आप बहुत सुख भोगता है अगर वो इस काम को छोडना चाहे तो अलग होकर ईश्वर का भजन कर सकता है परंतु वो स्वार्थवश इस काम को करता है इस लिये प्रजा के दंड आदि में उस को भी कर्मबंधन अवश्य होता है परंतु चोर आदिकों को दंड देनेसे सारी प्रजा सुख वा शांतिसे रहती है तो उस पुण्य के प्रभाव से राजा नवीन कर्मबंधन से छूट जाता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जीवों को पाप पुण्य दोनों कर्मों का फल जुदा जुदा भोगना पडता है कि पुण्य करने से पाप छूट जाते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य जो भूल सें पाप कर्म हो जावे और उस कर्म के निमित्त जप तप दान आदि पुण्य कर्म प्रायश्चित्त रूप से किया जावे तो पाप कर्म छूट जाता है नहि तो दोनों जुदा जुदा

भोगने पडते हैं अथवा वडा भारी उग्र तप वा योगाभ्यास करने से वा पूर्ण ब्रह्म ज्ञान होने से भी सब पाप छूट जाते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् पाप पुण्य दोनों कर्मों का फल परलोक में या अगले जन्म में ही मिलता है कि इस जन्म में भी उनका फल कुछ देखने में आ सकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य जो कर्म साधारण रीति से किये जाते हैं उन का फल तो परलोक अथवा अगले जन्म में ही मिलता है परंतु जो पूर्ण पुरुषार्थ कर के वडे उग्र कर्म किये जाते हैं तो उन का फल इसी जन्म में देखने में आ जाता है जैसे कि पहले के बहुत से तपस्वी लोकों ने उग्र तप कर के देवतायों से वर दान लिये और उन का उत्तम फल इसी जन्म में भोगा तथा रावण कंस आदिकों ने प्रजा को बहुत दुःख देने से इसी जन्म में उस का खराव फल पाया तैसे अब भी कोई वडे पापी लोक फांसी लटकाये जाते हैं और गुणी लोक वडे वडे ऊंचे दरजों पर बिठाये जाते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् पाप पुण्य कर्म अपने शरीर से किये हूये लगते हैं किंवा दूसरों के भी लग जाते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य कुसंग वा सत् संग से खान पान सहवास से दूसरों के पाप पुण्य लग जाते हैं इस लिये पापी पुरुषों की संगत से श्रेष्ठ पुरुषों को हमेशां बचे रहना चहिये और पापियों को हमेशां सत् शास्त्रों की कथा वार्ता सुनना चहिये और धर्मात्मा पुरुषों के दर्शन स्पर्शन करना चहिये किंच हे शिष्य पाप पुण्य केवल कुसंग सत्संग से ही नहिं लगते हैं किंतु दूसरे को सलाह देने से वा मदद देने से वा सुन कर के खुश होने से भी पाप पुण्य का हिस्सा लग जाता है इस लिये पाप कर्म के लिये किसी को सलाह या मदंद नहि देना चहिये और सुन कर उस से घृणा करनी चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् एक के पाप पुण्य दुसरे को चले जाते हैं इस में क्या प्रमाण है ॥

उत्तर० हे शिष्य कौषीतकी उपनिषत् में लिखा है (तस्य प्रिया ज्ञातयः सुकृतमुपयंत्यप्रिया

दुष्कृतं) अर्थ० तिस उपासक पुरुष के जितने पुण्य होते हैं वो उसके मित्र बंधुवों को चले जाते हैं और जितने पाप होते हैं वो द्वेषी निंदकों को चले जाते हैं इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् वहुत से पापी लोक धनवान् वा सुखी देखने में आते हैं और कोई एक धर्मात्मा लोक दुःखी और दरिद्री देखने में आते हैं इस का क्या कारण है ॥

उत्तर० हे शिष्य साधारण पुण्य पापों का फल इस जन्म में नहि मिलता इस लिये वो पूर्व जन्मों के कर्मों के अनुसार यहां सुखी देखने में आते हैं परंतु अंत में धर्मात्मा लोक ही सुख पाते हैं और पापी दुःख पाते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् मरे हुये मनुष्यों के निमित्त जो पीछे से उन के पुत्र मित्र आदिलोक श्राद्ध दान पुण्य करते हैं वो उन को पहुंचता है कि नहि ॥

उत्तर० हे शिष्य अवश्य पहुंचता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह कैसे निश्चय होवे कि जरूर पहुंचता है क्योंकि जो जो वस्तु उन के

निमित्त दी जाती है वो तो ब्राह्मण लोक भोजन कर जाते हैं अथवा अपने घर ले जाते हैं और अपने अपने काम मे लाते हैं परलोक में उस जीव को कैसे पहुंच सकती है ॥

उत्तर० हे शिष्य जो लोक अपने लिये जो वस्तु पुण्य दान करते हैं वोभी तो दूसरों के काम में यहां ही आती है तो अगर उन को अपने पुण्य दान का फल परलोक में पहुंचता है तो दूसरे मरे हुयों को भी अवश्य पहुंचना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् वो तो अपने हाथ सें करते हैं इस लिये पहुंचना ठीक है परंतु मरे हूयों का तो अपने हाथ का किया हुया नहि होता है ॥

उत्तर० हे शिष्य अपने हाथ से ही किया हूया कर्म पहुंचता है यह नियम नहि है यज्ञ में ब्राह्मण होम करते हैं परंतु उस का फल यजमान को पहुंचता है राजायों के नौकर दानाध्यक्ष लोक दान देते हैं परंतु उसका फल राजा को होता है तथा युद्ध में शूर वीर लडते हैं परंतु हार जीत राजा की होती है ॥

प्रश्न० हे भगवन् वो तो राजा की नौकरी पाते हैं और उन का राजा के साथ स्वामी भृत्य का संबंध होता है ॥

उत्तर० हे शिष्य तो क्या मरे हुये पिता पितामह आदिका पुत्र पौत्रादिकोंके साथ नौकरों जैसा भी संबंध नहि होता किंतु उन सें अधिक होता है क्योंकि वो उनके बीजसे पैदा होते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् नौकर तो राजा की आज्ञा से काम करते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य श्राद्ध आदि कर्म जो वंश परंपरा से चले आते हैं और जिन का उपदेश पुत्रों को घर में देखने से मिलता रहता है उन में पिता पितामहों की आज्ञा ही समझनी चहिये क्योंकि वो मन में अवश्य जानते हैं कि हमारे पुत्र भी हमारे निमित्त श्राद्ध पुण्य दान करेंगे तो फिर विशेष आज्ञा देने की क्या जरूरत है बहुत से पुरुष मरते समय अपने पीछे दान पुण्य करने को घर के लोकों को स्वयं कह भी जाते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् मरे हूये पितर देखते तो नहि

हैं कि हमारे पीछे हमारे पुत्रों ने यह काम किया है तो फिर उन को फल कैसे हो सकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य वो तो नहि देखते परंतु कर्मों के फल देनेवाला ईश्वर तो देखता है और जानता है कि यह कर्म इस जीव ने अपने पितरों के लिये किया है अगर ईश्वर इस बात को नहि जानता हो तो फिर जीव जो अपने लिये कर्म करते हैं उन में भी गडबड हो जावेगी कि कौनसा कर्म किस जीव का है यह खबर नहि पडेगी इस लिये हे शिष्य जो पुरुष जीते वा मरे हूये अपने माता पिता इष्ट मित्र आदि के निमित्त दान पुण्य शुभ कर्म करता है उस का फल उन को अवश्य पहुंचता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् मरे हुये मनुष्य तो अपने कर्मों के अनुसार दूसरी योनियों में जन्म लेते हैं तो फिर वो दान किये हुये पदार्थ उन को किस ढंग से पहुंचते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य यहां के पदार्थ तो साक्षात् उन को नहिं पहुंचते हैं परंतु अपने पितरों के निमित्तसें दूसरे जीवों को जो दान पुण्य दिया

जाता है तो उस के बदले में जिस योनि में उस के पितर होते हैं उस योनि के अनुकूल उन को खान पान आदि पदार्थों का सुख ईश्वर देता है॥

प्रश्न० हे भगवन् मरे हूयों को पीछे से किया हुया दान पुण्य पहुंचता है इस में क्या प्रमाण है॥

उत्तर० हे शिष्य मनुस्मृति के तीसरे अध्याय में लिखा है (यद्यद्ददाति विधिवत्सम्यक् श्रद्धासमन्वितः। तत्तत्पितॄणां भवति परत्रानंतमक्षयम्) अर्थ० जो जो वस्तु विधिपूर्वक श्रद्धा से यह पुरुष अपने पितरों के निमित्त देता है सो सो परलोक में पितरों को अनंत और अक्षयरूप हो कर मिलती है इति॥

प्रश्न० हे भगवन् जो सुखी लोक हैं वो स्वर्ग में हैं और जो दुःखी हैं वो नरक में हैं सो यह नरक स्वर्ग यहां इसी लोक में है किंवा परलोक में कोई दूसरी जगा पर है॥

उत्तर० हे शिष्य स्वर्ग नरक यहां नहि है परलोक में है॥

प्रश्न० हे भगवन् इस बात का कैसे निश्चय होवे॥

उत्तर० हे शिष्य जो वस्तु नेत्रों से देखने में नहि आती उस का अनुमान से वा शास्त्र सें निश्चय होता है सो स्वर्ग नरक का प्रसंग सब जगा वेद शास्त्रों में लिखा हूया है इस लिये उस का निश्चय करना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् जब हम लोक स्वर्ग नरक को नहि देख सकते तो पहले के शास्त्र लिखने-वालों ने कैसे देख लिये ॥

उत्तर० हे शिष्य पहले के ऋषि लोकों ने यो-गाभ्यास वा तप के बल करके देखे थे और वो वहां जाते आते भी थे नारद मुनि केई वार स्वर्ग से पृथिवी पर आता था तथा मार्कंडेय ऋषि स्वर्ग से नीचे पांडवों के पास आया था अर्जुन बाण-विद्या स्वर्ग में सीखने गया था तथा उद्दालक का पुत्र नचकेता नरक में जा कर पीछे आया था इत्यादि अनेक इतिहास महाभारत वा पुराणों में लिखे हैं उन से निश्चय होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् स्वर्ग नरक किसी पृथिवी के हिस्से में है कि आकाश में है ॥

उत्तर० हे शिष्य स्वर्ग तो आकाश में है और नरक भूगोल से परे दक्षिण दिशा में है ॥

प्रश्न० हे भगवन् स्वर्ग में कौन लोक रहते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य स्वर्ग में देवता लोक रहते हैं॥

प्रश्न० हे भगवन् इस बात का कैसे निश्चय होवे कि स्वर्ग मे देवता लोक रहते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य रात को जो आकाश में तारा-मंडल दीखता है वो सब देवतायों के निवास के स्थान हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस में क्या प्रमाण है ॥

उत्तर० यजुर्वेद के ३१ अध्याय में लिखा है (यत्र देवा अमृतत्वमानशानास्तृतीये धाम-न्नध्यैरयंत) अर्थ० जहां देवतालोक अमरपणे को भोगते हूये पृथिवी से तीसरे धाम में रहते हैं इति तथा महाभारत के बनपर्व में लिखा है (एते सुकृतिनः पार्थ स्वेषु धिष्ण्येष्ववस्थिताः। यान् दृष्टवानसि विभो तारारूपाणि भूतले ॥ दद-र्शाद्भुतरूपाणि विमानानि सहस्रशः। तारा-रूपाणि यानीह दृश्यंते द्युतिमंति वै) अर्थ०

जब अर्जुन स्वर्ग के समीप पहुंचा तब इन्द्र के सारथी मातलिने कहा के हे अर्जुन यह जो तुं चमकते हूये स्थान देखता है यह सर्व पुण्यात्मा लोक अपने स्थानों में रहते हैं जिन को तुम ने पृथिवी में तारारूप से देखा था तब अर्जुन अनेक प्रकार के विचित्र विमानों को देखता भया जो यहां पृथिवी में प्रकाशमान् तारे दीखते हैं इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् देवता तथा मनुष्यों में क्या फ़रक है ॥

उत्तर० हे शिष्य देवतायों के शरीर दिव्यप्रकाशस्वरूप हलके अग्नितत्त्व प्रधान होते हैं और मनुष्यों के शरीर भारी तेजहीन मलिन पृथिवीतत्त्व के हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् देवतायों की क्या पहचान है ॥

उत्तर० हे शिष्य देवतायों के नेत्रों की निमेष नहि होती तिन के शरीर की छाया नहि होती तिन के वस्त्रों में पृथिवी की धूल नहि छूती तिन के गले की फूल माला कुमलाती नहि तिन के पैर पृथिवी पर नहि लगते रात्री को तिन के शरीर प्रकाशरूप चमकते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् इन वातों में क्या प्रमाण है॥

उत्तर० हे शिष्य महाभारत के वनपर्व में नलराजा के आख्यान में लिखा है (सापश्यद्विबुधान् सर्वानस्वेदान् स्तब्धलोचनान् । हृषितस्रग्रजोहीनान् स्थितानस्पृशतः क्षितिम्) अर्थ० दमयंती ने स्वयंवर में देवतायों को देखा कि उन के शरीर में पसीना नहि था उन के नेत्र निमेषरहित थे उन की माला कुमलाई नहि थी उन के वस्त्रों में धूल नहि लगी थी उन के पैर पृथिवी से ऊंचे थे इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् देवता गिणती में कितने हैं॥

उत्तर० हे शिष्य जैसे मनुष्यों का निवासस्थान पृथिवीमंडल मनुष्यलोक कहलाता है तैसे ही स्वर्ग देवलोक कहलाता है इस लिये लोक शब्द से स्वर्ग में देवतायों की बडी भारी वस्ती मालूम देती है सो पुराणों में जो देवतायों की तेतीस करोड आदि संख्या लिखी है सो ठीक समझनी चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् स्वर्ग में मनुष्य कैसे जा सकते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वरभजन यज्ञ जप तप दान परोपकार करनेवाले मनुष्य मरके स्वर्ग में जाते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् देवतायों का राजा कौन है॥

उत्तर० हे शिष्य देवतायों के राजा का नाम इन्द्र है ॥

प्रश्न० हे भगवन् नरक में कौन जाते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य जो मनुष्य जीवहिंसा परद्रोह चोरी व्यभिचार आदि पाप कर्म करते हैं वो नरक में जाते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् चोरी व्यभिचार आदि का तो फल यहां पर ही मिल जाता है तो फिर नरक में क्यों जाते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य जिन पापकर्मों का फल यहां-पर मिल जाता है वो तो शुद्ध हो जाते हैं परंतु जो गुप्त पाप होते हैं उन का फल नरक में भोगना पडता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् नरक का राजा कौन है ॥

उत्तर० नरक के राजा का नाम यमराज है ॥

प्रश्न० हे भगवन् पाप किस को कहते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य जिस काम के करने से तत्काल अथवा पीछे से परिणाम में अपने को वा दूसरे जीवों को दुःख क्लेश होवे उस को पाप कहते हैं जैसे हिंसा चोरी झूठ व्यभिचार ठगी इन कामों से दूसरे जीवों को दुःख पहुंचता है इस लिये यह सब पाप कर्म कहलाते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् पाप कितने प्रकार के होते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य मन वाणी और शरीर करके पाप तीन प्रकार के होते हैं जैसे मन सें दूसरों की बुराई का चिंतन करना वाणी सें दूसरों को कटुक वचन कहना वा झूंठ बोलना वा निंदा करनी और शरीर सें दूसरे जीवों को मारणा दुःख देना इस प्रकार से पाप तीन प्रकार के होते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् पुण्य वा धर्म किस को कहते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य जिस काम के करनेसे अपनेको तथा दूसरे जीवों को पीछे परिणाम में सुख की प्राप्ति होवे सो कर्म धर्म कहलाते हैं जैसे जप

तप दान व्रत नेम परोपकार इन कर्मों के परि-णाम में जीवात्मा को सुख की प्राप्ति होवे है इस लिये यह सब धर्म कहलाते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् धर्म कितने प्रकार का है ॥

उत्तर० हे शिष्य मन वाणी शरीर भेद से धर्म भी तीन प्रकार का है जैसे मन से दूसरों की भलाई का चिंतन करना वाणी सें दूसरों सें मिष्ट और सत्य भाषण करना तथा शरीर सें दूसरे जीवों को सेवा शुश्रूषा से सुख पहुंचाना ॥

प्रश्न० हे भगवन् धर्म के कितने भेद हैं ॥

उत्तर० है शिष्य आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक इस प्रकार से धर्म के तीन भेद हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् आध्यात्मिक धर्म किस को कहते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य जिस के करने में वाहिर के साधनों की आवश्यकता नहि होवे केवल अपने शरीर वा मन से किया जावे सो आध्यात्मिक धर्म कहलाता है जैसे कि अष्टांग योग है ॥

प्रश्न० हे भगवन् योग के कौन कौन से आठ अंग हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि यह योग के आठ अंग हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् यम कितने प्रकार के हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह अर्थात् किसी जीव की हिंसा नहि करनी हमेशां सत्यभाषण करना किसी की कोई वस्तु नहिं चुरानी ब्रह्मचर्य पालना वहुत पदार्थों का संग्रह नहि करना यह पांच यम कहलाते हैं जैन शास्त्र में इन को पांच महा व्रत कहते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् इन के करने से क्या लाभ होवे है ॥

उत्तर० हे शिष्य इन के पालन करने से मनुष्य सर्व प्रकार के पापों से वच जाता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् केवल पापों से ही बच जाता है किंवा कुछ धर्म संचयभी होता है ॥

उत्तर० हे शिष्य पापों से बचना दूसरी बात

है और धर्म संचय होना दूसरी बात है सो इन सें विशेष धर्मसंचय तो नहि होता परंतु इन सें सब पापों के मार्ग वंद होने से फिर धर्म का संचय जलदी हो सकता है जैसे पांच छिद्रवाले घडे के पांचों छिद्र वंद करने से फिर उस मे पानी डाला हुया ठहर जाता है तैसे ही इन पांचों व्रतों के पालन पूर्वक धर्म करने से धर्म का संचय ठीक होता है सो जैसे घडे के छिद्र वंद करने मात्र से ही घडा नहि भरा जाता है तैसे ही इन पांच व्रतों से ही धर्म संचय नहि हो जाता है अर्थात् हिंसा चोरी आदि करने से जो पाप लगने थे उन से जीव बच जाता है परंतु विशेष धर्म संचय तो योग के नियम आदि अंगों से होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् नियम कितने प्रकार के हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य शौच संतोष तप स्वाध्याय ईश्वर का आराधन अर्थात् हमेशां पवित्र रहना संतोष रखना तप करना गायत्री वा ओंकार आदि पवित्र मंत्रों का जप करना और ईश्वर का भजन करना इस प्रकार सें नियम भी पांच प्रकार के हैं॥

प्रश्न० हे भगवन् इन के पालन करने सें क्या लाभ होवे है॥

उत्तर० हे शिष्य इन पांचों में भी शौच और संतोष यह दोनों तो सहकारी हैं और तप जप ईश्वर का आराधन यह तीन धर्मसंचय के कारण हैं इन के अनुष्ठान करने सें दिन दिन धर्म की वृद्धि होवे है॥

प्रश्न० हे भगवन् आसन कितने प्रकार के हैं॥

उत्तर० हे शिष्य जितनी जीव योनियां हैं उन की बैठक के अनुसार उतने ही आसन हो सकते हैं परंतु तिन सब में सें चौरासी आसन मुख्य हैं फिर तिन में भी सिद्धासन पद्मासन वीरासन स्वस्तिकासन यह चार आसन मुख्य हैं इन के लक्षण सर्व योग शास्त्रों में लिखे हुये प्रसिद्ध हैं॥

प्रश्न० हे भगवन् आसन से क्या लाभ होता है॥

उत्तर० हे शिष्य आसन जमाने से चित्त स्थिर हो कर योगाभ्यास में तत्पर होता है॥

प्रश्न० हे भगवन् प्राणायाम किस को कहते हैं॥

उत्तर० हे शिष्य श्वास के रोकने के अभ्यास को प्राणायाम कहते हैं सो अभ्यास पूरक कुंभक रेचक करने से होता है अर्थात् पहले एक नासिका से प्राण को खेंच कर पेट में भरने को पूरक कहते हैं और पेट में भरे हुये प्राण को कुछ काल तक अपनी शक्ति मूजब रोक रखने को कुंभक कहते हैं और फिर दूसरी नासिका से धीरे धीरे प्राण को छोड देने को रेचक कहते हैं इस रीति से प्राणायाम का अभ्यास होता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् प्राणायाम से क्या लाभ होता है ॥

उत्तर० हे शिष्य प्राणायाम करने से मन रुक जाता है शरीर स्वच्छ निरोग होता है और आयु की वृद्धि होती है तथा प्राणों के ब्रह्मरंध्र में पहुंचने से समाधि होती है ॥

प्रश्न० हे भगवन् प्रत्याहार का क्या लक्षण है॥

उत्तर० हे शिष्य श्रोत्र नेत्र जिह्वा आदि सर्व इन्द्रियों को शब्द स्पर्श आदि विषयों से रोक करके जो अपने वशमें करना है उस को प्रत्याहार कहते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् प्रत्याहार सें क्या लाभ होता है ॥

उत्तर० हे शिष्य प्रत्याहार सें सर्व इन्द्रियों के वशीभूत होने सें मन निश्चल होकर धारणा करने में योग्य होता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् धारणा किस को कहते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य नासिका के अग्र भाग में भ्रूमध्य में नाभिचक्र में वा दीपशिखा चंद्रमा तारा आदि में जो दृष्टि के साथ मन को जमाना है उस को धारणा कहते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् धारणा से क्या लाभ होता है ॥

उत्तर० हे शिष्य धारणा से मन की स्थिरता होती है और ध्यान करने की योग्यता होती है

प्रश्न० हे भगवन् ध्यान किस को कहते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य भ्रूमध्य हृदयकमल ब्रह्मरंध्र में अपने इष्ट देव का वा ज्योति स्वरूप पर ब्रह्म का जो एकतान चित्त लगा कर चिंतन करना है उस को ध्यान कहते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् ध्यान करने सें क्या लाभ होवे है॥

उत्तर० हे शिष्य ध्यान सें चित्त तेलधारा की न्याईं स्थिर होवे है और समाधि करने की योग्यता होवे है॥

प्रश्न० हे भगवन् समाधि किस को कहते हैं॥

उत्तर० हे शिष्य अपने इष्ट देव वा ईश्वर के स्वरूप मे जो चित्त का ध्यान करते करते लीन हो जाना है उस को समाधि कहते हैं अथवा प्राणों को ब्रह्मरंध्र में चढाने से भी समाधि होवे है॥

प्रश्न० हे भगवन् प्राण चढाने की क्या रीति है॥

उत्तर० हे शिष्य पहले तीन चार महीने पर्यंत पथ्य भोजन करके प्राणायाम का अभ्यास करना चहिये जव पांच सात मिंट तक प्राण का कुंभक होने लग जावे तो फिर मूलवंधकी युक्ति से अपानको ऊपर खेंचने का अभ्यास करना चहिये उस के कुछ कालतक अभ्यास करने से नाभि के नीचे जो कुंडलिनी शक्ति है सो सरल हो जाती है तो प्राण सुषुम्नानाडीमें प्रवेश करके ऊपर को

चडने लग जाता है फिर कुछ काल मूलबंध सहित प्राण के कुंभक का अभ्यास करने से षट् चक्रों को भेदन करके प्राण मस्तक पर ब्रह्म रंध्र मे प्रवेश कर जाता है फिर कुछ काल पर्यंत प्राण चडाने का अभ्यास करते रहने से संपूर्ण प्राण के ब्रह्म रंध्र मे जाने से समाधि हो जाती है तथा इसी प्रकार उड्डियान बंध से अपान वायु को पीठ की तरफ लेजाने का अभ्यास करने से कुछ काल में मेरुदंडमे प्राण का प्रवेश हो कर संपूर्ण प्राण के ब्रह्म रंध्र में चडने से समाधि हो जाती है सो हमारे रचित योगरसायन ग्रंथ में योग के अष्ट अंगों की पूर्ण विधि लिखी हुई है विशेष जानना हो तो उस में देख लेना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् समाधि सें क्या लाभ होता है॥

उत्तर० हे शिष्य समाधि सें चित्त की अत्यंत शांति परमानंद की प्राप्ति ईश्वर के स्वरूप का साक्षात्कार अणिमादिक सिद्धियां और अंत में मोक्ष पद की प्राप्ति होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् आप की कृपा से आध्या-

त्मिक धर्म तो समझ में आगया अब कृपा करके आधिदैविक धर्म का लक्षण बताईए ॥

उत्तर० हे शिष्य जिसमें देवतायों का आराधन किया जावे उस को आधिदैविक धर्म कहते हैं॥

प्रश्न० हे भगवन् देवतायों का आराधन किस लिये करना चहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य देवता मनुष्यों से ऊंचे दरजे के हैं इस लिये उन के आराधन सें मनुष्यों को बहुत से लाभ होते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् क्या क्या लाभ होते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य देवतायों की प्रसन्नता सें मनुष्यों को इस लोक में तथा परलोक में सर्व प्रकार के मन वांछित सुख भोगों की प्राप्ति होवे है॥

प्रश्न० हे भगवन् देवतायों का आराधन किस प्रकार से होवे है ॥

उत्तर० हे शिष्य यज्ञ तप तथा मंत्रों का अनुष्ठान करने से होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् यज्ञ किस को कहते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य विष्णु इन्द्र आदि देवतायों

के निमित्त विधिपूर्वक अग्निकुंड में जो यव तिल घृत आदि पदार्थों का हवन किया जाता है उस को यज्ञ कहते हैं सो यज्ञ अग्निष्टोम चातुर्मास्य अश्वमेध आदि केई प्रकार के होते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् तप किस को कहते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य चांद्रायण आदि व्रत करने पंचाग्नि तपना जलधारा सहना इत्यादि हठपूर्वक शरीर का कष्ट सहन करने को तथा जितेन्द्रिय रहने को तप कहते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् मंत्रों का अनुष्ठान किस प्रकार से होवे है ॥

उत्तर० हे शिष्य गायत्री अष्टाक्षर नवार्ण आदि देवतायों के मंत्रों का जो विधिपूर्वक जप करना है उस को मंत्रानुष्ठान कहते हैं सो यज्ञ तप मंत्रानुष्ठान इन तीनों करके देवतायों का आराधन होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् केवल ईश्वर का ही आराधन क्यों नहिं किया जावे क्योंकि सोई सर्व जगत् का अधिपति है तो देवतायों के आराधन की क्या आवश्यकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य यद्यपि सर्व का कर्ता धर्ता मुख्य ईश्वर ही है तथापि बीच में जिन का उपकार होवे उन का भी पूजन करना आवश्यक है॥

प्रश्न० हे भगवन् देवतायों का क्या उपकार है॥

उत्तर० हे शिष्य सूर्य प्रकाश करता है चंद्रमा अन्न फल पुष्पों में रस डालता है इन्द्र वृष्टि करता है वायु सब वस्तुवों को ताजा वा जिंदा रखता है तथा बृहस्पति आदि सब ग्रह सुख शांति देते हैं इस लिये इन सब का मनुष्यों को पूजन करना आवश्यक है नहि तो कृतघ्नपणा होवेगा॥

प्रश्न० हे भगवन् तो फिर ईश्वर का आराधन किस लिये करना चहिये॥

उत्तर० हे शिष्य देवतायों का आराधन तो स्वर्ग आदि फल की कामना वा उन के उपकार के बदले के लिये करना चहिये और संसारबंधन की मुक्ति के लिये केवल ईश्वर का ही आराधन करना योग्य है॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर का आराधन किस रीति से होवे है॥

उत्तर० हे शिष्य पहले स्नान आदि से पवित्र हो कर एकांतस्थान में बैठ कर अपने हृदयकमल में अथवा भ्रूमध्यमें पूर्णमासी के कोटि चंद्रमा के समान दिव्य ज्योतिस्वरूप ईश्वर का ध्यान कर के तिस का मन से पुष्प चंदन आदि से पूजन करना चहिये और स्तुति प्रार्थना करनी चहिये ध्यान के अनंतर माला लेकर ओंकार का जप करना चहिये ओम् ओम् इस प्रकार धीरे धीरे शांतिपूर्वक जप करना चहिये और जप करते वक्त जगत् की उत्पत्ति स्थिति प्रलय आदि ईश्वर की विचित्र रचना दिव्य प्रभाव तथा दिव्य चरित्रों का मन में स्मरण करना चाहिये तथा ईश्वर की प्रसन्नता के लिये ईश्वर के पुत्र समान सब जीवों को सर्व प्रकार से सुख देना चहिये किसी जीव को दुःख नहिं पहुंचाना चहिये और सर्व प्रकार के पापकर्मों से बचे रहना चहिये तो ईश्वर का पूर्ण आराधन होवे है क्योंकि जो पुरुष ईश्वर का भजन तो करता है और दूसरे जीवों को दुःख देता है तो उस के ऊपर ईश्वर ठीक ठीक प्रसन्न नहि होता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर के आराधन सें मोक्ष-पद की प्राप्ति कैसे होवे है ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर के आराधन सें सर्व पापों के नाश होने सें अंतःकरण की निर्मलता होती है और सत्शास्त्रों के विचार सें तथा ब्रह्मवेत्ता गुरू के समागम से तत्त्वज्ञान की प्राप्तिद्वारा जीव को कैवल्य मोक्ष पद की प्राप्ति होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् आप के कथन से आधिदैविक धर्म भी समझ में आय गया अब कृपा कर के आधिभौतिक धर्म का क्या स्वरूप है सो मुझको वतलाइए ॥

उत्तर० हे शिष्य मनुष्य पशु पक्षि कीट पतंग आदि सर्व जीव जंतुवों की जो सेवा शुश्रूषा वा पालन पोषण सहायता करनी है सो आधिभौतिक धर्म कहलाता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् आधिभौतिक धर्मसंचय करने की क्या रीति है ॥

उत्तर० हे शिष्य मनुष्यों के लिये वावली कूये तालाव वगीचे धर्मशाला पाठशाला औषधालय

अनाथालय अन्नक्षेत्र जलप्याव आदि वनाने अथवा उपदेश करके दूसरों से वनवाने चहिये और पशुवों के लिये स्थान छाया घास चारा जल आदिका प्रबंध करना तिन को बध मारण अति भार लादने आदि सें कष्ट नहिं पहुंचाना चहिये तथा पक्षियों के लिये फल वाले वृक्ष लगाना वृक्षों में जल के कुंडे बांधना मकानों की छत्तों के ऊपर अन्न के दाने वखेरने मकानों की भींतो में तिन के लिये छोटे छोटे आले रखना चहिये और तिन को जाल में फसाना वा पिंजरों में वंद करना वा मारणा खाना नहि चहिये और नदी तालाव वा समुद्र सें मछलियों को पकडना मारणा नही चहिये तथा मधु मखियों का सहत नहि निकालना और कीडे कीडियों के बिलों में अनाज के कणके डालने तथा मार्ग में देख देख कर चलना इत्यादि उपायों सें सर्व जीवों की सेवा शुश्रूषा पालन पोषण करने सें आधिभौतिक धर्म का संचय होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् आध्यात्मिक आधिदैविक

आधिभौतिक इन तीनों धर्मों के सेवन करने सें क्या लाभ होवे है ॥

उत्तर० हे शिष्य इन तीनों धर्मों के सेवन करने सें सकाम पुरुषों को तो ब्रह्मलोक स्वर्ग आदि सर्व भोगों की प्राप्ति होवे है और निष्काम पुरुषों को ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति द्वारा मोक्ष पद की प्राप्ति होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् साधारण रीति से धर्म कितने प्रकार के हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य सात्विक राजस और तामस इस भेद से धर्म तीन प्रकार के हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् सो कौन कौन से हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य ओंकार आदि पवित्र मंत्रों का जप करना ध्यान समाधि करना वेद शास्त्रों का पठन करना ईश्वर का आराधन करना देवतायों का पूजन करना हरिकीर्तन कथा वार्ता सत्संग करना यह सब सात्विक धर्म हैं। और यज्ञ करना दान देना वावली कूप तालाव बनाना सदावर्त्त लगाना धर्मशाला औषधालय मंदिर

बनाना तीर्थ यात्रा करना यह सब राजसी धर्म हैं। तथा व्रत उपवास करना पंचधूनी तपना जल प्रवाह लेना अग्नि वा चिता में जल मरणा हिमालय में जा गलना द्वारका आदि में शंख चक्र त्रिशूल आदि तपाय कर छाप लेना भूत प्रेत काली भैरव आदि का साधन करना मांस मदिरा वा पशु बलि देना यह सब तामसी धर्म हैं॥

प्रश्न० हे भगवन् इन में किन धर्मों का अनुष्ठान करना ठीक है॥

उत्तर० हे शिष्य मुमुक्षु पुरुषों को सात्विकी वा राजसी धर्मों का अनुष्ठान करना ठीक है तामसी का ठीक नही है॥

प्रश्न० हे भगवन् धर्मविषय में कौन कौन से शास्त्र प्रमाण मानने चहिये॥

उत्तर० हे शिष्य चारों वेद उपनिषत् पातंजल आदि षट्शास्त्र मनु आदि स्मृतियां यह सब धर्म विषय में प्रमाण मानने चहिये॥

प्रश्न० हे भगवन् इन शास्त्रों में जो बातें लिखी हैं सो संपूर्ण माननीय हैं किंवा कुछ नहि भी माननी चहिये॥

उत्तर० हे शिष्य देश काल के अनुसार जिस में किसी प्रकार की हानि नहि होवे उस बात को मानना चहिये और जो बात देश काल के विरुद्ध होवे और जो अपने समाजकी हानिकारक होवे वो बात नहि माननी चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् पुराणों को धर्मविषय में प्रमाण मानना चहिये कि नही ॥

उत्तर० हे शिष्य पुराणों में जो इतिहास भाग है सो संपूर्ण प्रमाण नहि है परंतु पुराणों में जो धर्म और ज्ञानसंबंधी उपदेश लिखे हैं सो प्रमाण मानना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् पुराणों की सब कथायों सच्ची हैं कि झूठी हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य पुराणों की कथा बहुत करके तो सच्ची हैं परंतु अति विस्तार सें बहुत लिखी हुई हैं तथा बहुत सी पशुपक्षियोंकी कथायों उपदेश के लिये बनावटी भी लिखी हुई हैं सो उन का भी उपदेश में तात्पर्य होने सें लिखना ठीक ही समझना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् शिवपुराण में शिवजी को सब देवतायों सें वडा लिखा हूया है और विष्णुपुराण में विष्णु को सब सें वडा लिखा है देवी भागवत में देवी को सब सें बडा लिखा है इत्यादि सूर्य गणेश आदि सब देवता अपनी अपनी जगा सब सें बडे लिखे हैं तो इन सब में सें किस को वडा समझना चहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य ग्रंथरचना का यह नियम है कि जिस जगा जिस का वर्णन होता है उस जगा पर उसी की बडाई की जाती है सो अपनी अपनी जगामें सब बडे हैं परंतु सर्वत्र पुराणों में तथा धर्मशास्त्रों में विष्णु और शिव का माहात्म्य अधिक लिखा हुया है तिन में भी सत्वगुण प्रधान होने सें विष्णु की मुख्यता है इस लिये सब देवतायों सें विशेष करके विष्णु भगवान् का ही आराधन करना ठीक है ॥

प्रश्न० हे भगवन् विष्णु भगवान् का आराधन किस प्रकार सें होवे है ॥

उत्तर० हे शिष्य तप करके जप करके यज्ञ करके मानसध्यान पूजन करके और प्रतिमा में

पूजन करके विष्णु भगवान् का आराधन किया जावे है इन में जो अपने अनुकूल पडे उस करके ही करना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् प्रतिमा तो पत्थर या धातु की जड होवे है उस में विष्णु का आराधन किस प्रकार से हो सकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य यद्यपि प्रतिमा तो जड रूप ही होती है परंतु बाहिर पूजन के लिये कुछ आधार तो अवश्य होना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् जड रूप प्रतिमा का पूजन किया हूया विष्णु भगवान् को किस तरे पहुंच सकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य विष्णु भगवान् को किसी पदार्थ के पहुंचने की आवश्यकता नहि है वो सर्वज्ञ होने से केवल मन सें भक्तजनों की पूजा वा प्रेमभाव को ग्रहण करके प्रसन्न होते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् विष्णु का मानसपूजन किस रीति सें होवे है ॥

उत्तर० हे शिष्य अपने हृदयकमल में रत्नज-

डित सुवर्णमय सिंहासन का ध्यान कर के तिसके ऊपर कोटि भानु सम तेज युक्त विष्णु भगवान् का चरणों सें ले कर मस्तकपर्यंत चिंतन करे पीछे मन सें चंदन पुष्प धूप दीप नैवेद्य से भगवान् का प्रेम सें पूजन करे तथा स्तुति प्रार्थना करे इस को मानसपूजन कहते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् फिर सब लोकों को मानसपूजन ही करना चहिये वाहिर प्रतिमा में पूजन करने की क्या आवश्यकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य जिन के मन विशेष चंचल नहि होवें और जिन को वाहिर पूजन की सामग्री संग्रह करने में परिश्रम होता हो ऐसे साधु महात्मा त्यागी पुरुषों को तो मानसपूजन ही करना ठीक है और जो गृहस्थाश्रम में हों तो उन को वाहिर और मानस दोनों प्रकारका पूजन करना योग्य है ॥

प्रश्न० हे भगवन् सर्व जगत् के कर्ता हर्ता निर्गुण ईश्वर का ही आराधन करना ठीक है तो फिर वीच में विष्णु के आराधन करने की क्या आवश्यकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य यद्यपि निर्गुण ईश्वर का आराधन करना ही मुख्य है परंतु निर्गुण ईश्वर का स्वरूप सब लोकों को जलदी जानने में नहि आ सकता है और उस के ठीक ठीक स्वरूप जाने विना उस का पूजन होना भी कठिन है इस लिये पहले जब तक निर्गुण ईश्वर के स्वरूप का पूर्ण ज्ञान नहि हो लेवे तब तक सगुण ईश्वररूप विष्णु भगवान् का ही आराधन करना उचित है ॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर का अंशरूप तो सबी जीव वा देवी देवता हैं तो खास कर के विष्णु को ही सगुण ईश्वर का स्वरूप क्यों समझना चहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य यद्यपि सर्व जीवों में ईश्वर का अंश है तथापि विष्णु के शरीर में सब सृष्टि के जीवों वा देवी देवतायों सें बडा अंश है जैसे बावली कूप तालाव आदि सब जलाशयों सें समुद्र में जल का अंश सब सें बडा है तथा तेज का सब सें बडा अंश सूर्य में है तैसे ही सब सें बडा ईश्वर का अंश विष्णु में है ॥

प्रश्न० हे भगवन् विष्णु मे सब सें वडा अंश होने का क्या कारण है ॥

उत्तर० हे शिष्य जैसे स्वच्छ दर्पण में सूर्य का वडा प्रकाश होता है तैसे ही विष्णु का शरीर केवल सत्त्वगुणमय है इस लिये उस में ईश्वर का सब सें वडा अंश रहता है इस लिये विष्णु को ही ईश्वर का सगुण रूप समझना योग्य है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जैसे वडे नगर में जाने के अनेक मार्ग होते हैं तैसे ही ईश्वर के आराधन की भी बहुत संप्रदायें हैं तो केवल विष्णु के आराधन करने का क्या प्रयोजन है ॥

उत्तर० हे शिष्य यद्यपि अनेक संप्रदायों सें ईश्वर का आराधन करना अनुचित नहि है तथापि बहुत संप्रदायें होने सें देश में बहुत हानि होती है ॥

प्रश्न० हे भगवन् क्या क्या हानि होती है ॥

उत्तर० हे शिष्य पहले तो बहुत संप्रदायोंके होने सें प्रजामें बहुत से विभाग हो जाते हैं बहुत विभाग होने सें प्रजा के चित्त और मतों में भेद हो जाता हैं चित्तों में भेद होने सें परस्पर प्रजा

में प्रीति मिलाप नहि रहता प्रीति मिलाप नहि होने सें आपुस में निंदा और द्वेष उत्पन्न हो जाता है उस में फिर दूसरे मतवालों की हानि और अपने मत की वृद्धि के लिये उपाय किये जाते हैं तो परस्पर लडाई झगडे खडे हो जाते हैं तो उस में ईश्वर का भजन ध्यान शांतिपूर्वक नहि हो सकता और न कोई आत्मोन्नति के लिये वा देशोन्नति के लिये कुछ पुरुषार्थ हो सकता है और पुरुषार्थ विना क्रम सें धीरे धीरे प्रजा तथा देश की अधोगति हो जाती है और फिर पराधीनता होने सें प्रजा के धर्म कर्म सब बिगड जाते हैं और जीव अधोगति को जाते हैं इस लिये वहुत संप्रदायों से ईश्वर का आराधन करना ठीक नही है ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो फिर क्या करना उचित है॥

उत्तर० हे शिष्य जब सर्व जगत् का पिता ईश्वर एक है तो उस का आराधन भी सब लोकों को एक ही संप्रदाय सें करना उचित है इस लिये पहले कथनकरी रीति सें सगुण और निर्गुण ईश्वर का एक संप्रदाय सें ही आराधन करना ठीक है॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर के ध्यान भजन आराधन की विधि शास्त्रों से देखलेनी चहिये किंवा किसी गुरु से सीखनी चहिये॥

उत्तर० हे शिष्य छांदोग्य उपनिषत् में लिखा है (आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयतीति) अर्थ० गुरु मुखसे ही ग्रहण करी हूई विद्या अभीष्ट फल की प्राप्ति करती है इति । इस लिये हे शिष्य मंत्र जप ध्यान भजन की विधि गुरु मुखसे ही ग्रहण करनी चहिये केवल शास्त्रों से देख कर करना ठीक नही है॥

प्रश्न० हे भगवन् गुरू वनाने में कुछ उच्च जाति कुलका नियम है कि नहीं॥

उत्तर० हे शिष्य ऐसा कुछ धर्म शास्त्रों का विशेष नियम नही है कि उच्च जाति का ही गुरु होना चहिये किंतु जिस पुरुष में गुरुपणे की योग्यता होवे उसी से ही गुण का ग्रहण कर लेना चहिये क्योंकि महाभारत आदि इतिहासों से इस वात का निश्चय होवे है जैसे कि शुक देवने जनक राजा से उपदेश ग्रहण कियाथा जाजलि ऋषिने तुलाधार वैश्य से उपदेश लिया था तथा एक

ब्राह्मणकुमार ने धर्मव्याध से उपदेश ग्रहण किया था इस प्रकार गुणों की अधिकता से चारों वर्ण परस्पर गुरु शिष्य हो सकते हैं जैसे कि मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में लिखा है (श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीताऽवरादपि ।) अर्थ० श्रद्धावान् पुरुष शुभ विद्या को अपने से नीच जातिवाले से भी ग्रहण कर लेवे इति । और जिस पुरुषमें गुरुपणे की योगयता और उत्तम जाति दोनों बातें होवें तो वो औरभी श्रेष्ठ जानना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् एक गुरु से गुरुदीक्षा लेकर फिर दूसरा गुरु करना ठीक है कि नही ॥

उत्तर० हे शिष्य व्यवहारिक विद्या के लिये तो एक गुरु का नियम नही है जहां जहां से उत्तम गुण की प्राप्ति होवे तहां तहां से ही सीख लेना चहिये परंतु गुरु मंत्र दीक्षा तो एक गुरु से ही लेनी ठीक है परंतु जो पहला गुरु विद्याहीन अज्ञानी और अनाचारी होवे तो उस का परित्याग कर के दूसरा विद्यावान् ज्ञानवान् सदाचारी गुरु कर लेने में कुछ दोष नही है ॥

प्रश्न० हे भगवन् देवी देवतायों के आगे वा

यज्ञ में जो बकरा आदि पशुवों का बलिदान दिया जाता है सो ठीक है कि नहि ॥

उत्तर० हे शिष्य बहुत जगा शास्त्रपुराणों में यह बात लिखी हुई तो है परंतु यह पुराणी चाल है ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह चाल किस कारण सें पडी थी ॥

उत्तर० हे शिष्य पहले समय में लोक अपने घरों में पशुवों को अधिक पालते रखते थे और पशुवों के देन लेन सें विवाह शादी करते थे अपने घर मे आये राजा आदि वडे आदमियों को पशु ही भेट करते थे तो अपने इष्ट देव के पूजन में तथा यज्ञ में भी पशुवों का ही बलिदान करते थे इस लिये उसी चाल के अनुसार धर्मशास्त्रों में लेख लिखे गये और वो चाल अबी तक जारी चली आती है सो अब तो पानी की नहरों सें पृथिवी में अन्न बहुत उत्पन्न होता है चांदी सोने की मुद्रायों से लेन देन का व्यवहार होता है तो इस काल में पशु बलिदान की आवश्यकता नहि है ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो फिर शास्त्रों की आज्ञा का उल्लंघन होवेगा ॥

उत्तर० हे शिष्य शास्त्रों का मतलब भी तो समझना चहिये ऐसे हि अंधपरंपरा नहि चले जाना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो शास्त्रों का क्या मतलब है ॥

उत्तर० हे शिष्य धर्मशास्त्रों का मतलब यह है कि अगर देवतायों को प्रसन्न करना है तो जो तुमारे पास अन्न दूध दही घृत धन पशु प्यारे पदार्थ हैं सो पूजन में वा यज्ञ में देवतायों के अर्पण करो खास कर पशुवों को ही अर्पण करो यह मतलब नहि है इस लिये इस काल में देवतापूजन में वा यज्ञ करने में पशु वलि दान करने की कुछ आवश्यकता नहि है केवल दधि घृत यव तिल चावल शर्करा आदि पवित्र पदार्थों से ही देवतायों का पूजन वा होम करना चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस में क्या प्रमाण है कि विना पशु वलिदान के भी देवता प्रसन्न हो जाते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य महाभारत के मोक्षधर्म पर्व में लिखा है (यदेव सुकृतं हव्यं तेन तुष्यंति देवताः । नमस्कारेण हविषा स्वाध्यायैरौषधै-स्तथा) अर्थ० यव तिल घृत आदि जो पवित्र हवन के पदार्थ हैं तिन सें तथा नमस्कार करने सें वेदाध्ययन सें मंत्र जपने सें वा औषधियों सें देवता प्रसन्न होते हैं इति तथा पुराणों के बहुत से इतिहासों में प्रसिद्ध है कि केवल तपस्या करने सें देवता प्रसन्न हुये और उनों ने आय करके अपने भक्तों कों वर दान दिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् आप की कृपा सें यह तो मेरी समझ में आय गया कि देवतापूजन वा यज्ञ में पशुवलिदान की आवश्यकता नहि है परंतु जैन मतवाले सर्व प्रकार सें जीव हिंसा वा पापों से बचने का उपदेश करते हैं तो केवल पापों सें बचना ही ठीक है किंवा यज्ञ तप दान आदि धर्मसंचय के कर्म करने भी श्रेष्ठ हैं ॥

उत्तर० हे प्रिय शिष्य केवल पापों सें बचने सें परलोक में विशेष लाभ नहि होता क्योंकि पापों के करने सें जो बुरा फल होना था वो नहि

हुया परंतु उस में अधिक लाभ तो कुछ नही हूया इस लिये पापों सें बचना और धर्मसंचय के काम करने यह दोनों मिलाय करके करने सें पर-लोक में पूर्ण लाभ होता है॥

प्रश्न० हे भगवन् धर्मसंचय करने के कौन से कर्म हैं॥

उत्तर० हे शिष्य सत् शास्त्र पढने सत् पुरुषों का संग करना ईश्वर का भजन करना जप तप व्रत उपवास योगाभ्यास दान पुण्य करना बावली कूप तालाव धर्मशाला बगीचे औषधालय बनाना माता पिता गुरु जनों की सेवा करनी इत्यादि सब धर्म संचय के काम हैं॥

प्रश्न० हे भगवन् इन में और तो सब ठीक है परंतु बावली कूप तालाव खुदवाने में और धर्मशाला आदि मकान बनाने में तो बहुत से सूक्ष्म जीव मरते हैं तो इन में धर्म संचय किस तरेसें होवे है॥

उत्तर० हे शिष्य यद्यपि इन में अवश्य सूक्ष्म जीवों की हानि होती है परंतु फिर उनके तियार होने पर लाखों जीवों को लाभ भी तो बहुत पहुं-

चता है सो हानि सें लाभ अधिक होने सें यह काम धर्म संचय के हेतु हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् पहले हानि करनी पीछे लाभ उठाना ऐसा काम क्यों करना चहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य जिस काम में दस रुपया का खर्चा होवे और सौ रुपया का लाभ होवे तो वो काम अवश्य करना उचित है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जिस पुरुष को लाभ की इच्छा नहि होवे तो वो ऐसे कर्म क्यों करे ॥

उत्तर० हे शिष्य अगर अपने लाभ की इच्छा नहि होवे तो भी दूसरे जीवों को लाभ पहुंचाने का काम तो अवश्य करना चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् अगर दूसरे जीवों को लाभ नहि पहुंचाया जावे तो उस में क्या हानि है ॥

उत्तर० हे शिष्य जगत् में अपना अपना भरण पोषण तो कौवे कुत्ते वगेरा तुछ जीव भी कर लेते हैं परंतु अपने तन मन धन सें दूसरे जीवों को लाभ पहुंचाना येही मनुष्य शरीर की योग्यता का लक्षण है जो पुरुष मनुष्य शरीर

पाय करके परोपकार के लिये कुछ काम नहिं करता है उस का मनुष्य जन्म निष्फल और व्यर्थ समझना चहिये इस लिये धर्म संचय के लिये पूर्वोक्त परोपकार के काम अवश्य करने चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् मनुष्य जाति में जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र यह चार वर्ण हैं सो कर्म सें वने हैं कि इन का वीज जुदा जुदा है ॥

उत्तर० हे शिष्य सर्व वर्ण के मनुष्यों के शरीर एक जैसे देखने में आते हैं हाथ पैर नेत्र आदि सब इन्द्रिय अस्थि मज्जा नाडियां वगेरा सर्व मनुष्यों में एक सरीखे वरावर देखने में आते हैं जो वीज में भेद होता तो शरीरों में भी कुछ फरक जरूर होता जैसे आम जामन नारंगी केला आदि वीजों में फरक है तो उन के फलों में भी प्रत्यक्ष फरक होता है तैसे ही जो मनुष्यों के वीज में फरक होता तो तिन के स्वरूप में भी अवश्य कुछ फरक होता सो प्रत्यक्ष कुछ फ़रक प्रतीत नहि होता है क्योंकि जब कोई परदेसी आदमी किसी के पास आता है तो वो उस की जाति

पूछता है कि भाई तुं कौन है तुमारी क्या जाति है अगर मनुष्यों में कुछ स्वरूप का भेद होता तो ऐसा प्रश्न कवी नहि होता सो मनुष्यों में कुछ स्वरूप का भेद नहि है इस लिये जाति का प्रश्न किया जाता है यातें हे शिष्य मनुष्यों के बीज में तथा शरीरों की वनावट में कुछ फरक नहि है ॥

प्रश्न० हे भगवन् मनुष्यों में भी गोरे काले लंवे मधरे केई किसम के शरीर देखने में आते हैं॥

उत्तर० हे शिष्य शरद वा गरम आदि देशों में रहने से वा माता पिता के शरीरों के कारण से मनुष्यों के शरीरों के रंग ढंग में फरक होता है परंतु सब के शरीरों की वनावट में कुछ फरक नहि है सब एक जैसे हैं इस लिये उन के असली बीज में फरक नहि हो सकता ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो वेदशास्त्रों में चार वर्ण क्यों लिखे हुये हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य संसार के व्यवहार चलाने के लिये चार वर्णों की आवश्यकता है इस लिये पहले के ऋषि मुनियों ने मनुष्यों में कर्म के अनुसार चार वर्ण स्थापित कर दिये हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् चार वर्णों की क्या आवश्यकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य जो ब्राह्मण नहिं होवें तो धर्म विषय का पठन पाठन कथा उपदेश आदि का अभाव होने से प्रजा में धर्मविषयमें अंधकार हो जावे ॥

प्रश्न० हे भगवन् सब लोक अपने आप क्यों नहिं धर्मविषय का पठन पाठन विचार कर लिया करें ॥

उत्तर० हे शिष्य सब लोकों को अपने अपने काम धंधो में लगे रहने सें पूरा पूरा अवकाश नहि मिलने सें पूर्ण रीति से धर्मविषय का विचार नहि हो सकता इस लिये उस के लिये कुछ मनुष्यों का वर्ग अलग होना चहिये जो केवल धर्म विषय का ही काम करे करावे इस लिये ब्राह्मण वर्ण की आवश्यकता है और जो क्षत्रिय वर्ग नहि होवे तो प्रजा का न्याय वा देश की बाहिरी शत्रुवों से रक्षा कौन करे क्योंकि प्रजा के लोक अपने आप अपना न्याय वा रक्षा नहिं कर सकते तथा वैश्य वर्ग नहि होवे तो खेती व्यापार धंधा

कौन करे और शूद्रवर्ग नहि होवे तो तीनों वर्णों की सेवा शुश्रूषा कौन करे इस लिये हे शिष्य ईश्वर की इच्छा सें पहले के ऋषि मुनियों ने व्यवहार की अनुकूलता के लिये मनुष्यों मे चार वर्णों की व्यवस्था कर रखी है सो ठीक है ॥

प्रश्न० हे भगवन् दूसरे देशों मे तो चार वर्ण नहि हैं तो वहां व्यवहार में क्या हानि होती है॥

उत्तर० हे शिष्य सर्व देशों में सर्वत्र चार वर्ण मौजूद हैं परंतु वो लोक प्रत्यक्ष मानें चाहे न मानें ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह बात कैसे जानी जावे ॥

उत्तर० हे शिष्य सब देशों में धर्मचर्चा करनेवाले राज्यप्रबंध करनेवाले व्यापार करनेवाले और सेवाकर्म करनेवाले मनुष्य प्रत्यक्ष देखने में आते हैं इस लिये सब जगा चारों वर्ण समझ लेने चाहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह चारों वर्ण कर्मों सें हुये हैं बीज सें नहि हुये इस में क्या प्रमाण है ॥

उत्तर० हे शिष्य महाभारत के शांतिपर्व के

मोक्षधर्म पर्व में लिखा है (न विशेषोस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् ॥ ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्) अर्थ० मनुष्यों में वर्णों की कुछ नीच ऊंचता नहि है क्योंकि यह सर्व जगत् ब्रह्मा ने रचा है इस लिये यह सब ब्रह्मा की संतान बराबर है परंतु नीच ऊंच कर्मों के कारण सें मनुष्यों में चार वर्ण हो गये हैं इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो वेद सें क्यों लिखा है कि आदिपुरुष के मुखसें ब्राह्मण हुये भुजा सें क्षत्रिय हूये जंघा सें वैश्य हूये और पैरों सें शूद्र उत्पन्न हूये ॥

उत्तर० हे शिष्य इस वेदवाक्य में फकत ब्राह्मण सब सें ऊंचे उन सें क्षत्रिय नीचे क्षत्रियों सें वैश्य नीचे वैश्यों सें शूद्र नीचे दरजे के बताये गये हैं और कुछ मतलब नहि है क्योंकि मुख भुजा जंघा पैरों सें कभी मनुष्य पैदा नहि हो सकते हैं मनुष्य सृष्टिका तो (तां समभवत् ततो मनुष्या अजायंत) इस वेदवचनमें मैथुन सें उत्पन्न होना लिखा है ॥ इस लिये केवल चारों-वर्णों की ऊंच नीचता जनाने के लिये ही आदि-

पुरुष के मुख भुजा आदि से चारों वर्णों की उत्पत्ति अलंकार रूप से लिखी हुई है असल में सब मनुष्यों का एक किसम का ही बीज है केवल देश काल खान पान आदि कारणों सें मनुष्यों के रूप रंग आकार भाषा आदि में फरक दीखता है परंतु शरीर की बनावट सें कुछ फरक नहि है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जब सर्व मनुष्यों का एक ही बीज है तो सब जाति के मनुष्य आपुस में खान पान विवाह आदि व्यवहार मिल करके क्यों नहि करते ॥

उत्तर० हे शिष्य यद्यपि सब मनुष्यों का मूल कारण असली एक ही बीज है परंतु फिर बीच सें देश काल कर्म के कारण सें मनुष्यों के बीज सें अंदरूनी फरक हो गया है जैसे प्रायः गोरे का पुत्र गोरा होता है काले का काला स्थूल का स्थूल कृश का कृश होता है इस प्रकार प्रजा के रंग रूप आचार बिचार में फरक हो गया है इस लिये सब मनुष्यों का परस्पर मिल कर खान पान विवाह आदि व्यवहार ठीक नहीं हो सकता है परंतु जिन मनुष्य जातियों का परस्पर खान पान

आदि व्यवहार मिलता जुलता होवे तो तिन को तो आपुस से मिल कर वर्तने में कुछ हानि नहि है इसी लिये पहले के ब्राह्मण लोक क्षत्रियों के घरों में भोजन करते थे और उन की कन्या भी विवाह लेते थे और आपुस में मिल जुल के रहते थे ॥

प्रश्न० हे भगवन् स्त्रियों का क्या धर्म है ॥

उत्तर० हे शिष्य स्त्रियों को मुख्य तो पतिव्रता धर्म का पालन करना चहिये और उस के साथ साथ पति की अनुमति से जप तप ईश्वरभजन तीर्थयात्रा कथाश्रवण सत्संग आदि भी अवश्य करने चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् पतिव्रता धर्म किसको कहते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य तन मन धनसे अपने पतिकी सेवा शुश्रूषा करनी और सर्वदा काल पतिकी आज्ञा में रहना पर पुरुष से व्यभिचार नहि करना पति के भोजन किये पीछे भोजन करना पति के सोने पीछे सोना पति के उठने से पहले

उठना सर्वथा पति के अनुकूल रहना इस को पतिव्रता धर्म कहते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् अगर स्त्री अपने पति सें छिपाकर किसी दूसरे पुरुष सें व्यभिचार कर्म करे तो उसको पाप लगता है कि नहिं ॥

उत्तर० हे शिष्य अवश्य बडा भारी पाप लगता है क्योंकि पति उस का धर्म सें पाणिग्रहण करता है और आप परिश्रम करके धन उपार्जन करके उस को खान पान पहरान मकान आदि देकर उस का भरण पोषण करता है तो उस के विरुद्ध चलने सें स्त्रीको कृतघ्नताके कारण सें और धर्मशास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन करने सें बडा भारी पाप लगता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् पति मरणे के पीछे स्त्रियों को दूसरा विवाह करना चहिये कि नहीं ॥

उत्तर० हे शिष्य साधारण रीति से तो धर्म शास्त्रों में स्त्रियों को एक ही पति के साथ विवाह करना और पति मरणे के पीछे ब्रह्मचर्यमें रह कर के धर्म का आचरण करना लिखा हूया है

परंतु जिन स्त्रियोंकी उमरा छोटी होवे और जिनके शरीर निरोग और संतान उत्पन्न करने के योग्य होवें तथा जो ब्रह्मचर्य पालन करने में असमर्थ होवें तो तिन के लिये दूसरा विवाह करना भी लिखा है जैसे कि वसिष्ठसंहिता के १७ अध्याय में लिखा है (तपसेवोन्मत्तामवशां व्याधितां वा नियुंज्यात् ज्यायसीमपि षोडशवर्षां नचेदामयाविनी स्यात् प्राजापत्ये मुहूर्ते पाणिग्रहणवदुपचारः) अर्थ० जो विधवा स्त्री पागल वा विहोश वा रोगिणी होवे तो उस को भजन तप करने में लगा देना चहिये और जो मध्यम उमरा की या सोलां वर्ष की होवे और रोगिणी नहि होवे तो उस का ब्राह्म मुहूर्त में पाणि ग्रहण की न्यांई विवाह कर देना चहिये इति। तथा नारदस्मृति के १२ अध्याय में भी लिखा है कि (नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ। पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते। अप्रवृत्तौ तु भूतानां दृष्टिरेषा प्रजापतेः। अतोऽन्यगमने स्त्रीणामेष दोषो न विद्यते।) अगर पहला पति कहीं परदेशमें लापता हो जावे

या मरजावे या साधु संन्यासी हो जावे या नपुंसक होवे या जाति सें पतित हो जावे तो इन पांच आपत् कालों में स्त्रियों को दूसरा पति कर लेना चहिये क्योंकि विधवा रहने में प्रजा की वृद्धि नहि होने सें प्रजापति का यह मत है कि उस काल में दूसरे पति के पास जाने सें स्त्रियों को दोष नहि होता है इति । और जो कहीं धर्मशास्त्रों में स्त्रियों को दूसरे विवाह की मनाही लिखी है सो तो वडी उमरा की वा विशेष संतानवाली स्त्रियों के लिये जाननी चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस प्रकार जब धर्मशास्त्रों के प्रमाण मौजूद हैं तो फिर कोई उच्च जातियों में स्त्रियों का दूसरा विवाह होना वंद क्यों किया गया है ॥

उत्तर० हे शिष्य महाभारत के आदि पर्व में लिखा है कि पहले समय में स्त्रियां स्वतंत्र थीं उन में एक पति का दृढ नियम नहि था सो जब कुछ ऋषियों की स्त्रियोंमें विशेष व्यभिचार फैलनेलगा तो तब सें स्त्रियों के लिये एक पति का दृढ नियम कर दिया गया है सो जानना चहिये ।

परंतु पति के मरणे के पीछे वसिष्ठ नारद पराशर आदि ऋषियों के मत के अनुसार दूसरा विवाह करने में दोष नहि है ॥

प्रश्न० हे भगवन् मरेहूये पति के साथ स्त्रियों का सती होना ठीक है कि नही ॥

उत्तर० हे शिष्य जीते हुये जलकर मरणे में तो आत्महत्या का वडा भारी पाप लगता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस वार्ता में क्या प्रमाण है॥

उत्तर० हे शिष्य यजुर्वेदके ४० अध्याय में लिखा है (असूर्या नाम ते लोका अंधेन तमसावृता: । तांस्ते प्रेत्याभिगच्छंति ये के चात्महनो जना:) अर्थ० जो पुरुष आत्मघात करते हैं सो मरकर के तमोगुण से ढकी हूई आसुरी नीच योनियों को प्राप्त होते हैं इति । तथा पद्म पुराण में सृष्टि खंड के ४९ अध्याय में भी लिखा है (या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत् । सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत्) अर्थ० जो ब्राह्मण जाति की स्त्री मरे हूये पति के साथ सती होती है तो वो आत्मघातिनी

होने से अपने आत्मा तथा पति को स्वर्ग में नही लेजा सकती है अर्थात् नरक में जाती है इति। यहां ब्राह्मण जाति से दूसरी जातियों का भी ग्रहण समझलेना ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो पहले समय में स्त्रियों में सती होने की चाल क्यों पडी थी ॥

उत्तर० हे शिष्य धर्मशास्त्रों में अग्निचिता में जल मरणा तीर्थजल में डूब मरणा हिमालय आदि पर्वत से गिरकर मर जाना इत्यादि धर्म लिखा है सो इसी निमित्त सें स्त्रियां पति के साथ चिता में जल मरती थीं परंतु यह धर्म आपत् काल में महादुखी महादरिद्री महारोगी महापापी लोकों के लिये प्रायश्चित्त रूप है दूसरे लोकों के लिये नहि है दूसरों को तो वैसा करने सें अवश्य आत्मघातका पाप लगता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् स्त्रियों को वेद पढने का अधिकार है कि नही ॥

उत्तर० हे शिष्य धर्मशास्त्रों में तो स्त्रियों को केवल यज्ञ में पति के साथ वेदमंत्र बोलने का अधिकार लिखा है परंतु वेदों की छांदोग्य बृह-

दारण्यक आदि उपनिषदों में मैत्रेयी कात्यायनी गार्गी आदि स्त्रियों को उपदेश किया हूया लिखा है इस लिये अगर स्त्रियां उपनिषदों का पठन करें तो कुछ दोष नही है ॥

प्रश्न० हे भगवन् स्त्रियों को किसी साधु महात्मा वा विद्वान् ब्राह्मण से गुरु मंत्र दीक्षालेने का अधिकार है कि नही ॥

उत्तर० हे शिष्य मुख्य तो स्त्रियों को अपने पति की सेवा करनाही परमधर्म है परंतु अपने कल्याण के लिये पति वा घरवालों की अनुमति से गुरु मंत्र दीक्षालेने में कुछ दोष नही है क्योंकि सुलभा गार्गी चूडाला मंदालसा मैनावती मीरावाई आदि स्त्रियोंने ऋषियों तथा साधु महात्मायों से उपदेश लिया शास्त्रों में लिखा है। और जो कहीं धर्मशास्त्रों में लिखा है कि स्त्री का पति ही गुरु होता है उस का मतलब पतिको गुरुके तुल्य पूज्य मानने का है गुरु मंत्र दीक्षालेने का नही है परंतु जिस स्त्रीका पति स्वयं विद्वान् पंडित होवे तो उस को दूसरे से उपदेशलेने की आवश्यकता नही है ॥

प्रश्न० हे भगवन् स्त्रियों को साधुनी संन्यासिनी वनने का अधिकार है कि नही ॥

उत्तर० हे शिष्य सुलभा गार्गी आदि स्त्रियां पुराणों में त्यागिनी हूई सुनने में आती हैं इस लिये अपने कल्याण साधन के लिये स्त्रियों को साधनी होने में दोष नही है परंतु चालीसवर्ष की उमरा के पीछे स्त्री को साधुनी संन्यासिनी होना ठीक है क्योंकि प्रजा वृद्धि की हानि होने के कारण और व्यभिचार के संभव होने के कारण से स्त्रियों का छोटी उमरा में त्यागिनी होना ठीक नही है ॥

प्रश्न० हे भगवन् स्त्री पुरुष दोनों में प्रधानता किस की होनी चहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वरने पुरुषों की अपेक्षा सें स्त्रियों का शरीर कोमल और निर्बल रचा है तथा स्त्री पुरुष का गर्भ धारण करती है इस लिये स्त्रियों को पुरुषों के अधीन रहनाही ठीक है इसी में उन की भलाई है परंतु पुरुषों को भी उन के सर्व प्रकार के सुख आराम में कबी किसी प्रकार की बाधा नही डालनी चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् स्त्री पुरुष दोनें में भोक्ता कौन है ॥

उत्तर० हे शिष्य जहां जड चेतन दो पदार्थ होते हैं वहां तो चेतन भोक्ता होता है और जड उस का भोग्य होता है और जहां दोनों चेतन होते हैं तो वहां परस्पर दोनों भोक्ता होते हैं सो स्त्री पुरुष दोनों चेतन हैं इस लिये दोनों भोक्ता हैं। केवल उस में पुरुष की प्रधानता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् स्त्री भी भोक्ता है इस में क्या प्रमाण है ॥

उत्तर० हे शिष्य मनुस्मृति के नवम अध्याय में लिखा है (सुरूपं वा कुरूपं वा पुमानित्येव भुंजते) अर्थ० पुरुष सुंदर हो अथवा कुरूप हो स्त्रियां इस बात का ख्याल नही करती किंतु केवल पुरुष जान कर ही उस को भोग लेती हैं इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् पुरुष स्त्री दोनों को पुण्य पाप बराबर लगता है कि उस में कुछ फरक है ॥

उत्तर० हे शिष्य स्त्री पुरुष दोनों को पुण्य

पाप बराबर लगता है क्योंकि जो एक बात में स्त्री को पाप लगे और पुरुष को नहि लगे तो फिर सर्व बातों में स्त्रियों को हि पाप लगे पुरुषों को नहि लगे इस लिये दोनों को बराबर पुण्य पाप लगता है।

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर के नाम जपने से क्या लाभ होता है॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर के नाम जपने से सर्व पापों का नाश होता है और संसारबंधन सें जीव की मुक्ति होती है॥

प्रश्न० हे भगवन् पाप तो कुछ बुरा कर्म करने से लगता है तो उस का नाश भी किसी उत्तम पुण्य कर्म कर के ही होना चहिये केवल नाम जपने से पापों का नाश कैसे हो सके है॥

उत्तर० हे शिष्य मन वाणी और शरीर भेद से तीन प्रकार के कर्म होते हैं सो नाम का जपना भी एक प्रकार का वाणी का कर्म है सो शरीर के पाप कर्मों को वाणी का शुभ कर्म नाश कर देता है इस लिये ईश्वर के नाम जपने से सर्व पापों का नाश होना ठीक है॥

प्रश्न० हे भगवन् तीर्थयात्रा करने में कुछ लाभ हैं कि नही॥

उत्तर० हे शिष्य तीर्थयात्रानिमित्त परदेशाटन करने में अनेक प्रकार के पदार्थ वा पुरुष देखने में आते हैं उन सें अनुभव में वृद्धि होती है विलक्षण विलक्षण ईश्वर की रचना के नमूने देखने में आते हैं कुछ द्रव्य भी धर्म के निमित्त खर्च होता है वहुत से घर के धंधे फिकरों से छुटी मिलती है और साधु महात्मायोंका दर्शन वा सत्संग होता है इत्यादि अनेक लाभ होते हैं परंतु तीर्थों में जाकर दान सुपात्रों को देना चहिये किंच जिस तीर्थ का मार्ग वहुत विकट होवे जहां जाने से अपनी जानमाल को जोखम होवे तो वहां जाने का हठ नहि करना चाहिये॥

प्रश्न० हे भगवन् तीर्थों के जल में स्नान करने सें कुछ पुण्य होता है कि नहि॥

उत्तर० हे शिष्य पवित्र वा तपोभूमि के कारण सें जल में स्नान करने से पुण्य होता है और विशेष करके अपनी भावना भी फलदायक होती है॥

प्रश्न० हे भगवन् तीर्थ पर दान किन को देना चहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य यात्रियों के निमित्त पंडे लोक परिश्रम करते हैं तिन को तो अवश्य शक्ति-मूजब दान देना ही चहिये परंतु तहां और भी जो सुपात्र साधु ब्राह्मण विद्यार्थी रहते हों तिन का भी सत्कार करना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् दान देने सें क्या लाभ होता है ॥

उत्तर० हे शिष्य दान देने सें दूसरे जीवों को सुख मिलता है तो देनेवाले को ईश्वर उस के बदले में सुख देता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् किस वस्तु का दान देना सब सें उत्तम है ॥

उत्तर० हे शिष्य सर्व दानों सें अन्न तथा जल का दान श्रेष्ठ है परंतु विशेष धनवालों के लिये गौ सुवर्ण और पृथिवी का दान भी सब से उत्तम है ॥

प्रश्न० हे भगवन् दान देने के कौन कौन पुरुष अधिकारी हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य एक तो लूले लंगडे अंधे कुष्टी आदि जो द्रव्य कमाने में असमर्थ हैं उन को दान देना चहिये दूसरे विद्या पढनेवाले विद्यार्थी तथा पढानेवाले पंडितों को दान देना चहिये तीसरे जो साधु महात्मा लोक भजन ध्यान वा धर्मोपदेश करते हैं तिन को दान देना चहिये इस के उपरांत दीन दुखी दरिद्री अनाथोंको यथाशक्ति दान देना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् एकादशी आदि उपवास व्रत करने से क्या लाभ होता है ॥

उत्तर० हे शिष्य उपवास व्रत करना एक प्रकार का तप है सो जैसे उपवास व्रत करने से मन और इन्द्रियों का जलदी दमन होवे है तैसे और किसी उपाय से नही होवे है तथा जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्ण निर्मल हो जाता है तैसे ही उपवास व्रत करने से पापरूप मल के दूर होने से जीवात्मा शुद्ध निर्मल हो जाता है इस लिये उपवास व्रत अवश्य करना चहिये परंतु जैन मतवालों की न्यांई जीवात्मा को अत्यंत कष्ट देकर बहुत दिन पर्यंत उपवास व्रत करना ठीक नही

है क्योंकि उस में उलटा चित्तमें क्लेश होने से शांति पूर्वक ईश्वर का भजन ध्यान तत्त्वज्ञान विचार आदि मोक्ष का साधन ठीक नही हो सके है इस लिये जिस में शरीर में स्वस्थता और चित्त में शांति रहे उतने कालतक ही उपवास व्रत करना चहिये अधिक नही करना चहिये परंतु जो किसी देवता की प्रसन्नता के निमित्त सकाम तप करना होवे तो उसमें उपवास व्रत के काल का कुछ नियम नही है जहां तक सहन हो सके करना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् देवतायों के मंदिर बनाने चहिये कि नहि ॥

उत्तर० हे शिष्य साधारण लोकों के लाभ के लिये मंदिर बनाना तो बहुत अच्छा है परंतु मंदिरों का बंदोबस्त ठीक होना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् किस प्रकार का बंदोबस्त होना चहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य पहले तो एक नगर वा एक ग्राम में एक ही मंदिर बनाना चहिये और उस में किसी विद्वान् पुजारी को रखना चहिये और

मंदिर के समीप पाठशाला व्याख्यानशाला पुस्तकालय सदावर्त मुसाफिरखाना औषधालय बनाना चहिये जिस से नगर के वा परदेसी लोकों को सर्व प्रकार का लाभ पहुंचे तथा नगर के सर्व प्रकार के धर्म के काम मंदिर में होने चाहिये नगर के सब लोकों को उस मंदिर में सहायता देनी चहिये तथा मंदिर में नित्य कथा कीर्तन व्याख्यान धर्मोपदेश होने चहिये तो मंदिर बनाने में अवश्य लाभ है नहि तो जुदा जुदा बहुत से मंदिर बनाने और उन की व्यवस्था ठीक नहि होनी यह बात ठीक नहि है ॥

प्रश्न० हे भगवन् मंदिर की मूर्तियों को विरोधी लोक तोड डालते हैं चोर वस्त्र भूषण चुरा ले जाते हैं कुत्ते वगेरा अपवित्र जीव मंदिर में घुस जाते हैं तो मूर्तियां कुछ नहि करती सो मूर्तियों में कुछ देवतायों की शक्ति होती है कि नहि ॥

उत्तर० हे शिष्य मूर्तियों के अंदर देवता सर्वदा काल बैठे नहि रहते किंतु जब उपासक लोक विधि पूर्वक तिन का मूर्ति में आवाहन पूजन

करते हैं तो उस काल में अपनी ज्ञान दृष्टि सें मूर्ति में प्रवेश कर के तिन की पूजा को ग्रहण करते हैं जैसे यज्ञ में वेदमंत्रों सें आवाहन करने सें देवता लोक सूक्ष्म रूप सें आय करके अपने अपने भाग को स्वीकार करते हैं तैसे ही मूर्ति-पूजा में भी समझ लेना चहिये परंतु किसी जगा मूर्ति में देवता की विशेष समीपता भी होती है॥

प्रश्न० हे भगवन् मंदिर की मूर्तियां कुछ खाती पीती तो नही हैं तो फिर उन के सामने भोजन जल फल फूल आदि पदार्थ क्यों रखे जाते हैं॥

उत्तर० हे शिष्य मूर्तियां कुछ खाती पीती तो नही हैं परंतु उन पदार्थों को अपने इष्ट देव के निमित्त अर्पण करने से पुरुष के मन का प्रेम भाव प्रसिद्ध होता है॥

प्रश्न० हे भगवन् देवता लोक तो मन के प्रेम भाव को अंदर से जान सकते हैं तो फिर बाहिर के पदार्थों के अर्पण करने की क्या आवश्यकता है॥

उत्तर० हे शिष्य केवल सूके मन के प्रेम से कुछ काम नही होता है किंतु अपने तन मन धन को अर्पण करने से देवता लोक समझतें हैं कि

इस भक्तने हमारे निमित्त इतना परिश्रम किया है तो इस से वो उस पर प्रसन्न हो कर वांछित वरों को देते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् मूर्तियां अपने भक्त जनों को सुख दुःख में सहायता क्यों नही करती ॥

उत्तर० हे शिष्य केवल मूर्तिपूजा से कुछ विशेष लाभ नही होता है किंतु मूर्ति की पूजा करके फिर उस के सन्मुख बैठकर दीर्घ काल पर्यंत श्रद्धा पूर्वक इष्ट देव का जप ध्यान करने से विशेष लाभकारी होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् कोई दूसरे लोक मूर्तिपूजा की निंदा क्यों करते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य प्रायः पूजक लोक मूर्तियों में ही हठकर के उन के अर्चन पूजन में ही सदा लगे रहते हैं और कुछ जप तप योग ध्यान तत्त्वज्ञान का विचार नही करते तो दूसरे लोक उन की निंदा करते हैं इस लिये मूर्तिपूजा के साथ ईश्वर का भजन ध्यान योगाभ्यास और तत्त्वज्ञान का विचार भी अवश्य करना चहिये केवल

एकली मूर्तिपूजा में ही सारी उमरा व्यतीत नही करनी चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस भारतवर्ष में जो नरसिंह वामन राम कृष्ण आदि अवतार माने जाते हैं सो क्या निर्गुण ईश्वर के होते हैं किंवा सगुण के होते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य निर्गुण ईश्वर तो सर्वव्यापक नित्य निराकार स्वरूप है उस का अवतार धारण करना नहि बन सकता है किंतु सगुण ईश्वर स्वरूप जो वैकुंठलोकवासी विष्णु भगवान् हैं तिन ही के पृथिवी में सब अवतार होते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो फिर अवतारों की ईश्वररूप से क्यों स्तुति की जाती है ॥

उत्तर० हे शिष्य विष्णु भगवान् के शरीर में सब से बडा ईश्वर का अंश रहता है यह वार्ता पहले कथन कर आये हैं इस लिये सब जगा विष्णु को ईश्वररूप माना है तो उन के साथ अवतारों का संबंध होने से अवतारों को भी लोक ईश्वर रूप मानते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् विष्णु भगवान् किस कारण सें पृथिवी पर अपनी अंश से अवतार धारण करते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य वैदिक धर्म के अनुसार ब्रह्मा विष्णु महादेव यह तीनों देवता इस जगत् के अधिकारी हैं तिन में ब्रह्मा तो जगत् को परंपरा से उत्पन्न करता है और विष्णु पालन करता है तथा महादेव संहार करता है तो जब विष्णु का पालन करने का अधिकार है तो समय समय पर आवश्यकता होने सें दुष्ट जीवों के नाश करने के लिये और धर्मात्मा पुरुषों की रक्षा के लिये तथा जगत् में धर्मप्रचार करने के लिये विष्णु भगवान् अपनी अंशसे पृथिवी पर अवतार ग्रहण करते हैं॥

प्रश्न० हे भगवन् तो विष्णु का आराधन करना मुख्य है कि अवतारों का आराधन करना ठीक है ॥

उत्तर० हे शिष्य मुख्यता करके तो चतुर्भुज विष्णु भगवान् का ही आराधन करना चहिये और तिसके अंग रूप से अवतारों का पूजन क-

रना चहिये क्योंकि सब अवतारोंका मूल कारण विष्णु भगवान् ही है ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह जो संसार में कोई प्रकार के मत चले हूये हैं तिन सबसे से कौनसा मत श्रेष्ठ है ॥

उत्तर० हे शिष्य जो ईश्वर और परलोक कों मानते हैं वो सबी मत अच्छे हैं क्योंकि थोडा बहुत ईश्वर का आराधन और धर्म का आचरण वो सबी करते हैं इस लिये किसी के मत की निंदा नही करनी चहिये परंतु ईश्वर और परलोक को नहि मानने वाले नास्तिक मतवाले पुरुषों का संसर्ग कबी नही करना चहिये क्योंकि उनकी बातें सुनने सें अल्पज्ञ पुरुषों के मन सें विभ्रम होना संभव होता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् अपने मत के प्रचार के लिये दूसरे मतों की निंदा करने में क्या हरजा है ॥

उत्तर० हे शिष्य दूसरे मतों की निंदा करने से लोकों में परस्पर द्वेष उत्पन्न होकर सब की हानि होती है किंतु केवल उत्तम आचार विचारों से अपने मत की उत्तमता दिखलाने सें दूसरे हीन मतों की आप ही निंदा हो जाती है इस

लिये किसी की निंदा किये विना अपने मत की उन्नति करने में तत्पर होना ठीक है ॥

प्रश्न० हे भगवन् ईश्वर का भजन ध्यान तत्त्वज्ञान का विचार गृहस्थाश्रम में रह कर के करना चहिये कि त्यागी साधु वन के करना चहिये ॥

उत्तर० हे प्रिय शिष्य अगर गृहस्थाश्रम में रह कर भजन ध्यान वा सत्संग के लिये पूर्ण अवकाश मिल सके तो गृहस्थाश्रम में ही रह कर करना ठीक है और अगर शरीर निर्वाह के लिये भिक्षावृत्ति के विना और कोई आलंवन नहि होवे और ठीक अवकाश भी नहि मिलता हो तो फिर साधु वन करके एकांत स्थान में ईश्वर का भजन ध्यान वा तत्त्वज्ञान का विचार करना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् साधुवों में कौनसी संप्रदाय सव सें उत्तम है ॥

उत्तर० हे शिष्य जिस संप्रदाय में ईश्वर के सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूपों का भजन ध्यान अर्चन होवे और योगाभ्यास तथा तत्त्वज्ञान का विचार होवे और आचारविचारमें पवित्रता होवे

तथा परलोकका साधन होवे सोई संप्रदाय सबसें श्रेष्ठ जाननी चहिये दूसरी नही ॥

प्रश्न० हे भगवन् साधु किस उमरा में होना ठीक है ॥

उत्तर० हे शिष्य छोटी उमरा में साधु होने में गुरुसेवा विद्याभ्यास जप तप योग तीर्थाटन आदि सब साधन ठीक हो सकते हैं परंतु उस में सारी उमरा ब्रह्मचर्य पालन करना कठिन होता है और वृद्धपणे में ब्रह्मचर्य तो पाल सकता है परंतु गुरुसेवा विद्याभ्यास जप तप योग आदि साधन ठीक नहि हो सकते इस लिये बलाबल देखने सें बिचली उमरा मे साधु होना ठीक है ॥

प्रश्न० हे भगवन् साधुपणे में गृहस्थी लोकों सें अन्न वस्त्र आदि ग्रहण करने सें दोष की प्राप्ति होती है कि नहिं ॥

उत्तर० हे शिष्य अगर अपने धर्म में रह क-रके ईश्वर का भजन ध्यान ब्रह्मज्ञान का अच्छी प्रकारसे संपादन किया जावे तो कुछ दोष नहि होता उलटा सेवा करनेवाले गृहस्थियों का भी कल्याण होता है परंतु ईश्वर के भजन ध्यान त-

त्वविचार के बिना केवल साधु का वेष धारण कर के गृहस्थियों से सेवा कराने से तो अवश्य प्रतिग्रह दोष की प्राप्ति होती है ॥

प्रश्न० हे भगवन् साधु संन्यासियों के धर्म तो शास्त्रों में वहुत कठिन लिखे हूये हैं इस समयमें तिन सब के पालन करने की आवश्यकता है कि नहि ॥

उत्तर० हे शिष्य पहले के समय में मनुष्यों के शरीर वलवान् और निरोग होते थे इस लिये कठिन तपस्या वा संयम हो सकते थे परंतु इस काल में तो प्रायः लोक निर्वल होने सें कठिन तप वा नियम पालन में समर्थ नहि हो सकते किंच केवल शरीर को कष्ट देने सें ही कुछ विशेष लाभ भी नहि होता मुख्य लाभ तो शांतिपूर्वक ईश्वर के आराधन करने सें और ब्रह्मज्ञान के विचार करने सें होता है इस लिये इस समय में तपस्या आदि विशेष क्लेश सहन करने की आवश्यकता नहि है परंतु ईश्वराराधन योगाभ्यास और ब्रह्मज्ञान में तो अवश्य परिश्रम करना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् ब्रह्मज्ञान किस प्रकार से होवे है ॥

उत्तर० हे शिष्य ब्रह्मचर्य आदि नियमों को धारण करके दीर्घकालपर्यंत तत्त्ववेत्ता गुरुकी सेवा शुश्रूषा करते हूये वेदांतशास्त्रों के पठन श्रवण करने से यथार्थ ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होवे है॥

प्रश्न० हे भगवन् ब्रह्मचर्य पालन करने में क्या लाभ होता है ॥

उत्तर० हे शिष्य ब्रह्मचर्य पालन करने से मन और इन्द्रियों की शक्ति वढती है शरीर में बल और तेज की वृद्धि होती है विद्याभ्यास जप तप योग आदि कार्य ब्रह्मचर्य पालन सें ठीक हो सकते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् सो ब्रह्मचर्य सारी उमरा तक पालन करना चहिये कि कुछ नियत काल तक करना चहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य सारी उमरा ब्रह्मचर्य पालन करने की विशेष आवश्यकता नहि है किंतु प्रथम अठारा वर्ष की उमरा तक तो सब को ब्रह्मचर्य

पालन करना चहिये और विद्यार्थियों को तप-स्वियों को योगाभ्यासियों को तथा मंत्रानुष्ठानियों को तो जब तक कार्य की सिद्धि नहि हो लेवे तब पर्यंत अवश्य ब्रह्मचर्य पालन करना चहिये और विद्याभ्यास आदि कार्य पूरे होने पर पीछे ब्रह्मचर्य पालन करने की आवश्यकता नहि है परंतु कोई योगी या तपस्वी लोक सारी उमरा ब्रह्मचर्य पालन करना चाहें तो उस में कुछ हानि नहि है उन की इच्छा की बात है ॥

प्रश्न० हे भगवन् परस्त्रीगमन करने में क्या दोष है ॥

उत्तर० हे शिष्य किसी भी पराई वस्तु में हाथ डालने में झगडा वा लडाई वा पाप का कारण होती है तो स्त्री तो पुरुषों को अत्यंत प्रिय वस्तु है उस के गमन करने में तो अवश्य लडाई झगडा वा पाप होने से दोष की प्राप्ति होती है ॥

प्रश्न० हे भगवन् वेश्या स्त्रीमें तो कुछ लडाई झगडा नहीं होता है तो उस के गमन करने में कुछ दोष होता है कि नही ॥

उत्तर० हे शिष्य वेश्यागमन से अवश्य दोष

लगता है क्योंकि एक तो वेश्या की कोई निश्चित जाति नही होनेसे वर्णसंकरपणा होता है और दूसरे प्रायः चोर जुवारिया शराबी आदि नीच लोकोंके संबंध से वेश्या पापिनी होती है तो उस के गमन से पाप लगता है और अगर गमन करने से वेश्या के गर्भ रह जावे और लडकी पैदा होवे तो वो सारी उमरा व्यभिचार कर्म करती है इस लिये वेश्यागमन में अवश्य दोष लगता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् विधवा स्त्री तो वेश्या की न्यांई पापिन नही होती है उस के गमन करने में पाप लगता है कि नही ॥

उत्तर० हे शिष्य अगर बरादरी की अनुमति से विधवा से विवाह कर लिया जावे तो कुछ पाप नही लगता नही तो अवश्य पाप लगता है किंच विधवा में गर्भ होना संभव होता है और उस के गिराने में बडा भारी पाप लगता है इस लिये सर्वदा काल अपनी स्त्री का ही गमन करना ठीक है ॥

प्रश्न० हे भगवन् मांसभोजन करने में क्या दोष है ॥

उत्तर० हे शिष्य मांसभोजन करने में जीव

हिंसा होती है और किसी जीव को दुःख देने का नाम ही तो पाप है तो फिर जीव को जान सें मार डालने में तो वहुत ही पाप लगता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् अगर अपने हाथ से जीव हिंसा नहि करी जावे और वाजार से कसाई की दुकान से मांस मोल लेकर खावे तो उस में क्या दोष है ॥

उत्तर० हे शिष्य उस में भी जीव हिंसा का पाप लगता है क्योंकि अगर मांस खाने वाले मोल नहि लेवें तो कसाई जीव हिंसा क्यों करे इस लिये उस का पाप खाने वालों को ही लगता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो फिर लोक मांसभोजन क्यों करते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य दूसरे शाकपत्रों सें मांस सें कुछ विशेष स्वाद होता है इस लिये जिव्हा इन्द्रिय की लोलुपता के कारण लोक मांसभोजन करते हैं परंतु ईश्वर ने तो मनुष्यों के लिये अनेक प्रकार के अन्न शाक फल फूल रचे हैं तो भी रजो तमो गुणी प्रमादी लोक ईश्वर की आज्ञा

का उल्लंघन करके मांसभोजन करते हैं और पाप के भागी होते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् भेड वकरी आदि जीवों से ईश्वर ने मनुष्यों को बलवान् और बुद्धिवान् बनाया है तो अगर वो उनको अपने भोजन में काम में लावें तो क्या दोष है ॥

उत्तर० हे शिष्य बल और बुद्धि का तो दूसरे बुद्धि हीन वा निर्बल जीवों की रक्षा करने में उपयोग करना चहिये न कि उलटा उस का बुरा उपयोग करना चहिये बल बुद्धि धन यह तीनों सज्जन पुरुषों के पास होते हैं तो इन से दूसरे जीवों को लाभ पहुंचता है और येही तीनों नीच पुरुषोंके पास होते हैं तो वो उन से दूसरे जीवों को दुःख वा क्लेश पहुंचाते हैं इस लिये बल बुद्धि का उपयोग दूसरे जीवों की भलाई में ही करना चहिये और इस क्षणभंगुर शरीर के लिये किसी जीव को मारणा वा खाना नहि चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् मदिरा में तो जीव हिंसा नहि होती है उस के पीने में क्या दोष है ॥

उत्तर० हे शिष्य मदिरा निकालने के पदार्थों के खमीर उठाने में हजारों सूक्ष्म जीव पड जाते हैं तो उन की हिंसा होती है तथा मदिरा पान सें वुद्धि में रजो तमो गुण की वृद्धि होती है तो प्रमाद के वश सें अगम्यागमन आदि वहुतसे अनुचित पाप कर्म होते हैं इस लिये उस के पीनें में वडा भारी दोष लगता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् दूसरे की वस्तु चुराने में क्या दोष है ॥

उत्तर० हे शिष्य दूसरे लोक वडे परिश्रम से धन आदि पदार्थों का संग्रह करते हैं सो उन की वस्तु चुराने से उन को वडा भारी क्लेश होता है तो दूसरे के जीव को दुखाना ही पाप है इस लिये चोरी करना वडा भारी पाप है ईश्वर ने सव को हाथ पैर आदि अंग वरावर दिये हैं सो सव को अपनी अपनी कमाई करके खाना पीना भोगना चहिये पराई आशा करना वा पराई वस्तु को चुराना यह वडा नीच कर्म है ॥

प्रश्न० हे भगवन् अगर अपने मित्र वा पिता

माता भाई की वस्तु उन की गैर हाजरी में जरूरी काम के लिये ले ली जावे तो क्या दोष है॥

उत्तर० हे शिष्य अगर किसी आवश्यक कार्य के लिये मित्र आदि की वस्तु ले ली जावे और फिर पीछे उन से कह दिया जावे कि मैंने अमुक वस्तु ली है तो कुछ दोष नहि है परंतु पीछे सें पश्चात्ताप वा उन के दिल दुखाने का कारण नहि होनी चहिये नहि तो उस में भी दोष की प्राप्ति होती है ॥

प्रश्न० हे भगवन् झूठ बोलने में क्या दोष है॥

उत्तर० हे शिष्य झूठ बोलने सें लोकों में पुरुष की प्रतिष्ठा और प्रमाणता नहि रहती और दूसरों को वंचन करने सें तथा विश्वासघात करने सें झूठे पुरुष को बडा भारी पाप लगता है इस लिये हमेशां सत्यभाषण करना ही ठीक है ॥

प्रश्न० हे भगवन् कोई लोक ऐसा कहते हैं कि आपत् काल में अपने तथा दूसरे जीव की रक्षा के लिये झूठ बोल देना चहिये ॥

उत्तर० हे प्रिय शिष्य सर्वत्र धर्म की बाबत

में बलाबल का विचार करना आवश्यक है आपत् काल में प्राणों की रक्षा करनी ठीक है कि सत्य धर्म रखना ठीक है यह बात बडे भारी विचार की है केवल धर्म के हठ से प्राण खो देना उचित नहि है अगर प्राण खोने से पूर्ण धर्म का लाभ होवे और परलोक में निश्चित शुभ गति का हेतु होवे तो धर्म के निमित्त प्राण खोना ठीक है जैसे कि उग्रतप उपवास व्रत योगाभ्यास परोपकार आदि शुभ कर्म शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं और जहां कुछ विशेष धर्म का लाभ नहि होवे केवल ऊपर से मोटी बुद्धिसे वा पुराणों के स्तुति वाक्य श्रवण से धर्म मान लिया जावे तो वहां धर्म के निमित्त प्राण खोना उचित नहि है जैसे कि कठिन तीर्थयात्रा जलप्रवाह अग्निप्रवेश पर्वतपतन आदि कर्म हैं तथा बहुत ऋषियों की संमति में तो सर्वथा प्राणों की रक्षा करनीहि श्रेष्ठ है क्योंकि प्राण रहने से और बहुत से धर्म कें काम हो सकते हैं अगर आपत् काल में कुछ असत्य भाषणआदि धर्म के विरुद्ध कर्म हो जावे तो फिर संपत् काल में प्रायश्चित्त करने से उस का दोष छूट सकता

है और उस से नवीन दूसरा शुभ कर्म भी हो सकता है इसलिये सब जगा धर्म की बाबत में बलाबल देख करके प्रवृत्त होना योग्य है ॥

प्रश्न० हे भगवन् सर्वत्र धर्म की रक्षा करनी ठीक है कि व्यवहार का सुधार करना ठीक है ॥

उत्तर० हे शिष्य अगर व्यवहार और धर्म दोनों का साथ साथ रक्षण वा सुधार होवे तो बहुत श्रेष्ठ है परंतु जहां शरीर रक्षा वा देश रक्षा आदि बडे व्यवहार सुधार की आवश्यकता होवे तो वहां पहले व्यवहार का सुधार करके पीछे धर्म रक्षा का प्रबंध करना उचित है क्योंकि व्यवहार ठीक होनेसे ही स्वतंत्रता पूर्वक धर्म का साधन हो सकता है अगर व्यवहार में द्रव्य स्थान स्वतंत्रता आदि की अनुकूलता नही होवे तो फिर निरंतर द्रव्य उपार्जन के लिये व्यग्रता वा पराधीनता होने से धर्म का अनुष्ठान ठीक नही हो सकता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् कोई लोक ऐसा कहते हैं कि व्यवहार बिगडे तो बिगडजावो परंतु सर्वथा धर्म की रक्षा करनी चहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य यह वात साधु संन्यासी त्यागी लोकों के लिये तो कदाचित् ठीक हो सकती है परंतु गृहस्थी वा राजा वा देश के मुखिया लोकों के लिये ठीक नही है क्योंकि धर्म का स्तंभ राज्य वा शक्ति है सो जिस जाति में राज्य वा शक्ति नही होती है तो वो दूसरों के पराधीन होने से उचित रीति से धर्म का साधन नही कर सकती है इसलिये धर्म के निमित्त व्यवहार को विगाड देना ठीक नही है ॥

प्रश्न० हे भगवन् मनुष्य पशु पक्षि आदि जीवों का शरीर धारण करके संसार में जीवन का क्या प्रयोजन है ॥

उत्तर० हे शिष्य सर्व देह धारियों का संसार में जीवन का प्रयोजन केवल सुख भोगना है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जो जीवन का प्रयोजन केवल सुख भोगना ही है तो फिर वेदांत शास्त्रों में विषय सुख की निंदा क्यों लिखी है ॥

उत्तर० हे शिष्य जो विषय सुख असंग होकर मर्यादा वा नीति धर्म से भोगा जावे तो वो निंदनीय नही होवे है किंतु संसक्ति पूर्वक मर्यादा

को लंघन करके अनीति से भोगने में निंदनीय वा पाप का हेतु होवे है केवल विषय सुख निंदा वा पाप का हेतु नही होवे है क्योंकि अगर केवल विषय सुख पाप वा निंदा का हेतु होता तो फिर पहले के ऋषि मुनि वा राजा लोक जो गृहस्थाश्रम में रहते थे सबी निंदित वा पापी होते परंतु सो वैसे नही हूये प्रायः वो लोक स्वर्ग वा मोक्ष गति को प्राप्त होते भये हैं इस लिये जीव की विषयों में अत्यंत आसक्ति और प्रमाद ही दोष वा निंदा का कारण है ऐसा समझना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो फिर विषय सुख का परित्याग करके योगी तपस्वी वा मुमुक्षु लोक योगाभ्यास तप वा विवेक विचार क्यों करते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य वो भी समाधि जन्य परम सुख वा उत्तम स्वर्ग सुख वा अत्यंत मोक्ष सुख के लिये ही यत्न करते हैं इस लिये जीवन का प्रयोजन केवल सुख भोगना ही है ऐसा निश्चय करना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् जीव का क्या स्वरूप है ॥

उत्तर० हे शिष्य इस स्थूल शरीर के अंदर

पांच ज्ञानइन्द्रिय पांच कर्मइन्द्रिय पांच प्राण और अंतःकरण अर्थात् मन इन सोलां तत्वों के साथ जो चेतन शक्ति का अंश मिला हूया है सो जीव कहलाता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् इन सोलां तत्वों में चेतन शक्ति कहां सें और कैसे आती है ॥

उत्तर० हे शिष्य ईश्वर के संकल्प सें पहले पांच महा भूतों सें यह सोलां तत्त्व उत्पन्न होते हैं तो इन में जो अंतःकरण है सो अति स्वच्छ पदार्थ है तिस में सर्वव्यापक ब्रह्मचेतनशक्ति का प्रतिविंब पडने सें अंतःकरण में चेतनता उत्पन्न हो जाती है जैसे स्वच्छ काच में सूर्य का तेज पडने सें अग्नि उत्पन्न हो जाती है तो फिर अंतःकरण के चेतन होने से प्राण इन्द्रियां और शरीर में चेतन शक्ति के प्रभाव से चेष्टा होने लग जाती है जैसे एक इंजन के चलने सें सव गाडियां चलने लगती हैं तैसे ही एक अंतःकरण के चेतन होने से सव इन्द्रियां चेतन हो जाती हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् अगर आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी इन पांच महा भूतों के मिलने से ही

शरीर में चेतनशक्ति प्रगट होनी मान ली जावे तो फिर जुदा व्यापक चेतन शक्ति मानने की क्या आवश्यकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य जब एक एक महाभूत में चेतन शक्ति नहि है तो फिर मिलाने सें भी कहां से आजावेगी जैसे कपडे बुनने में जो एक एक तंतु में रंग होता है तो कपडे में भी रंग आय जाता है और जब एक एक तंतु में रंग नहि होता तो फिर कपडे में भी नहि आय सकता है तैसे ही एक एक महाभूत में जब चेतनता नहि है तो फिर तिन के मिलने सें भी चेतनता नहि हो सकती इस लिये शरीर में चेतन शक्ति जुदा है पंच महाभूतों की नहि है उसी चेतनशक्ति को जीवात्मा कहते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् अंतःकरण में मिली हूई चेतनशक्ति व्यापक चेतनशक्ति से जुदा कैसे हो जाती है ॥

उत्तर० हे शिष्य जैसे सर्वत्र व्यापक आकाश घट के अंदर आने से व्यापक आकाश से जुदा हो जाता है और सब जगा बंद घट के साथ

जाता आता है तथा दूसरे घटाकाशोंसें भी जुदा रहता है तैसे ही चेतनशक्ति का अंतःकरण के संबंध सें व्यापक शक्ति से जुदा होना और परलोक में जाना आना तथा दूसरे जीवात्मायोंसे जुदा रहना समझ लेना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् जीवात्मा शरीर से जुदा है इस का कैसे निश्चय होवे ॥

उत्तर० हे शिष्य प्रथम तो जीवात्मा अपने को आप ही शरीर सें जुदा बतलाता है क्योंकि बहुधा जीव कहता है मेरा शरीर पतला है मोटा है गोरा है काला है इस रीति से शरीर से जीव जुदा निश्चय होता है। और दूसरे शरीर नाशवान् है और जीवात्मा अविनाशी है जैसे कि छांदोग्य उपनिषत् में लिखा है (जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियते) अर्थ० जीव सें रहित हूया शरीर मर जाता है जीव नही मरता है इति । इस सें भी जीव शरीर सें जुदा निश्चय होवे है। और तीसरे बृहदारण्यक उपनिषत् सें लिखा है (स एष इह प्रविष्ट आनखाग्रेभ्यः आत्मा निष्क्रामति चक्षुषो वा मूर्ध्नो

वान्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यः) अर्थ० जीवात्मा इस शरीर मे नख से लेकर शिखापर्यंत प्रवेश हूया है तथा मरण काल में जीवात्मा नेत्रद्वारा वा सिर से वा दूसरे शरीर के किसी अंगद्वारा शरीर से वाहिर निकल जाता है इति। सो शरीर सें प्रवेश होने और निकलने सें भी जीव शरीर सें जुदा निश्चय होवे है। और चौथे योगी लोक अपने शरीर से निकल कर पर शरीर में प्रवेश कर जाते हैं जैसे कि पतंजलि सूत्र में लिखा है (कर्मबंधशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः) अर्थ० कर्मबंध के शिथिल होने से और प्रचार के जानने से योगी पर शरीर में प्रवेश करता है इति। तो इस से भी जीवात्मा शरीर से जुदा निश्चय होवे है! तथा पांचवे वेद और शास्त्रों के उपदेश तवी ठीक हो सकते हैं जब के जीवात्मा शरीर से जुदा होवे क्योंकि यज्ञ तप दान आदि शुभ कर्मों का फल तो पर- लोक में ही मिलता है इस से भी जीव को शरीर से जुदा निश्चय करना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् जीवात्मा का स्वरूप कितना वडा है स्थूल है कि सूक्ष्म है ॥

उत्तर० हे शिष्य जीवात्मा का स्वरूप अत्यंत सूक्ष्म है परंतु जैसे दीपक का प्रकाश वडे मकान में रखने से वडा हो जाता है और छोटे मकान में छोटा हो जाता है तैसे ही हाथी वा कीडी आदि वडे छोटे शरीरों में अंतःकरणद्वारा जीवात्मा की चेतनता का संकोच विकाश हो जाता है परंतु जीव तो सब शरीरधारियों में एक जैसा ही होता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् विचरनेवाले शरीरों में तो जीवात्मा प्रत्यक्ष ही प्रतीत होता है परंतु वृक्ष लता आदि में भी जीव है कि नहि ॥

उत्तर० हे शिष्य सब प्रकार की वनस्पतियों में जीव होता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह कैसे जाना जावे कि वृक्षों में भी जीव है ॥

उत्तर० हे शिष्य जिन वृक्षों में जीव नहि रहता है तो वो खडे खडे ही सूख जाते हैं फिर पानी देने सें भी हरे नहि होते हैं और जीते वृक्ष

के मूल में पानी डालते हैं तो पी जाता है और नीचे से ऊपर डाली पत्तों तक पानी चला जाता है अगर उन में चेतनता नहि होवे तो फिर जलका ऊपर को कैसे आकर्षण हो सके और वृक्ष के समीप की लता वेल वृक्ष के ऊपर चड जाती है दूसरी तरफ नहि जाती तथा लज्जालू बूटी पुरुष के हाथ लगने से सिकुड जाती है इस लिये वृक्षों में अवश्य जीवात्मा का निश्चय होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस में क्या प्रमाण है कि वृक्षों में जीवात्मा है ॥

उत्तर० हे शिष्य महाभारत में शांतिपर्व के मोक्ष धर्म पर्व में लिखा है (तस्मात् शृण्वंति पादपाः तस्मात् पश्यंति पादपाः जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्यं न विद्यते) अर्थ० वृक्ष सुनते हैं वृक्ष देखते हैं वृक्षों में जीव देखने में आता है वृक्ष अचेतन नही हैं इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् संपूर्ण जीवों की कुछ गिणती संख्या है कि असंख्यात हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य जीव असंख्यात हैं ब्रह्म का

अंत आवे तो जीवों की संख्या हो सके क्यों कि सब जीव ब्रह्म के ही अवयवरूप हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् जीव अनादि है कि उत्पन्न होता है ॥

उत्तर० हे शिष्य पीछे कह आये हैं कि जीवात्मा दो पदार्थों के संयोग से बनता है एक चेतनशक्ति और दूसरा अंतःकरण सो तिन में चेतनशक्ति तो अनादि है और अंतःकरण पंचमहाभूतों से उत्पन्न होवे है सो तिन का संयोग आदि है इस लिये जीव को आदिवाला समझना चहिये केवल प्रवाहरूप से वा चेतनशक्ति के अनादि होनेके कारण सें जीव को अनादि कहते हैं॥

प्रश्न० हे भगवन् कोई वेदांती लोक कहते हैं कि जीव अविद्या के साथ मिली हूई चेतनशक्ति का नाम है और सो अविद्या अनादि होने सें जीव भी अनादि है तो आप कैसे कहते हो कि जीवात्मा आदिवाला है ॥

उत्तर० हे शिष्य अविद्या नाम प्रकृति के रजोगुणी अंश का है सो प्रकृति ईश्वर की उपाधि

होने से साक्षात् जीव की उपाधि नही हो सकती किंतु अंतःकरण रूप से ही होती है क्योंकि प्रकृति का कार्य होने से जीवों का अंतःकरण भी अविद्यारूप कह्या जावे है अंतःकरण से जुदा कोई अविद्या जीव की उपाधि नही है ॥

प्रश्न० हे भगवन् सुषुप्ति काल में वा निर्विकल्प समाधि में अंतःकरण का तो नाश हो जावे है तो फिर वो जीव की उपाधि कैसे हो सकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य सुषुप्ति और समाधि काल में अंतःकरण का नाश नही होता किंतु केवल सूक्ष्म अवस्था हो जाती है क्योंकि वो सुषुप्ति वा समाधि काल के आनंद का अनुभव करता है जो सुषुप्ति में अंतःकरण का नाश हो जावे तो फिर वो जाग्रत में कैसे आय सके और उस आनंद का कथन कैसे करे इस लिये अंतःकरणरूप हूई अविद्या ही जीव की उपाधि समझनी चहिये जुदा नही ॥

प्रश्न० हे भगवन् जीव आदि से उत्पन्न होता है इस में क्या प्रमाण है ॥

उत्तर० हे शिष्य योगवासिष्ठ के स्थिति प्रक-रण में लिखा है (एतेजीवाश्चिराद्भावाद्भवभा-वनयाहिताः ब्रह्मणः कलिकाकाराः सहस्रायु-तकोटयः संख्यातीताः पुराजाता जायंतेद्यापि चाभितः उत्पत्स्यंते च वैचान्ये कणौघाइव निर्झरात्) अर्थ० यह जो दीर्घ काल से संसार की वासनायों करके युक्त हजारों करोडों जीव हैं सो सब वृक्ष से कूंपलों की न्यांई ब्रह्म सें उत्पन्न हूये हैं तथा अनगिणत अब भी उत्पन्न हो रहे हैं और आगे भी उत्पन्न होवेंगे जैसे झरणे सें जल के कण-के उत्पन्न होते हैं इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् वेदांतशास्त्रों में जीवात्मा को सच्चिदानंदस्वरूप लिखा है सो किस तरे समझना चहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य जीवात्मा का सत् रूप इस लिये हैं कि उस का कबी नाश नहि होता शरीर का नाश हो जाता है परंतु जीवात्मा का नाश नहि होता ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस में क्या प्रमाण है कि जीव का नाश नहि होता ॥

उत्तर० हे शिष्य बृहदारण्यक उपनिषत् में लिखा है कि (अविनाशी वा अरेऽयमात्मा अनुच्छित्तिधर्मा) अर्थ० याज्ञवल्क्य मुनि का वचन है कि अरे मैत्रेयी यह आत्मा अविनाशी है इस का कवी नाश नहि होता है इति । तथा भगवत् गीता में भी लिखा है (न हन्यते हन्यमाने शरीरे) अर्थ० हे अर्जुन शरीर के नाश होने सें जीवात्मा का नाश नहि होता है इति। इस लिये जीव सत् रूप है और चेतनपणा तो जीवात्मा का सर्वत्र प्रसिद्ध ही प्रतीत होता है क्योंकि खाना पीना बोलना चलना देखना यह सब काम चेतनपणेसें ही हो सकते हैं इस लिये जीवात्मा चित् स्वरूप है तथा समाधि काल में वा विषयभोग काल में और सुषुप्ति काल में शरीर के अंदर सुख का अनुभव होवे है यातें जीवात्मा आनंद स्वरूप है इस प्रकार जीव का स्वरूप सत् चित् आनंदरूप निश्चय करना चहिये॥

प्रश्न० हे भगवन् कोई कहते हैं कि जीव का स्वरूप आनंदरूप नही है क्योंकि जीव हमेशां

सुख की वांछा करता है जो आनंदरूप होता तो फिर सुख की वांछा क्यों करता ॥

उत्तर० हे शिष्य कोई भी जीव अपना नाश नही चाहता सबी जीव सर्वदा काल अपने जीवने की वांछा करते हैं इस लिये सामान्य रूप सें जीवात्मा सुखरूप होने पर भी बहिर्मुख होने सें विशेष विषयसुख की वांछा करता है और हे शिष्य ऐसा कुछ नियम नही है कि जो जिसका स्वरूप होता है वो उस की वांछा नही करता देखो जैसे जीवका स्वरूप चेतन है परंतु अर्धांग वायु से अंग शून्य होने से जीव उस में विशेष चेतनता की वांछा करता है और स्वयं ज्ञानस्वरूप हूया भी विद्या पठन आदि से विशेष ज्ञान की वांछा करता है तथा जैसे शर्करा मीठी होनें पर भी दूध में मिलाने से और भी विशेष स्वादु हो जावे है तैसे ही जीव के स्वरूप की बावत भी समझ लेना चहिये किंच आनंदस्वरूप ईश्वर का अंश होने सें भी जीवात्मा आनंदरूप जानना चहिये क्योंकि जो अंशी में गुण होता है वो ही

अंशमें भी होता है केवल न्यून अधिकता का फरक होता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जीवात्मा आनंदरूप है इस से क्या प्रमाण है ॥

उत्तर० हे शिष्य बृहदारण्यक उपनिषत् में लिखा है (तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयोवित्तात्प्रेयोऽन्य-स्मात्सर्वस्मादंतरतरं यदयमात्मा आत्मानमे-व प्रियमुपासीत) अर्थ० यह जो सब से अंदर आत्मा है सो बडा प्यारा है पुत्र से भी प्यारा है धन से भी प्यारा है सो इस आत्मा को ही प्यारा अर्थात् आनंदरूप जानना चहिये इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् जीवात्मा ईश्वर की अंश है इस से क्या प्रमाण है ॥

उत्तर० हे शिष्य श्वेताश्वतर उपनिषत् में लिखा है (मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरं तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्) अर्थ० माया को प्रकृति समझना चहिये और मायावाले को ईश्वर समझना चहिये तिस के अवयवरूप जीवों से यह सारा जगत् पूरण

हो रहा है इति। तथा भगवत् गीता में भी लिखा है (ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः) अर्थ० संसार में मेरा ही अंशरूप सनातन जीव है इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह जीव कबी ईश्वर के बराबर हो सकता है कि नहि ॥

उत्तर० हे शिष्य यद्यपि पूर्ण ब्रह्मज्ञान के प्रभाव सें कैवल्यमोक्ष दशा में जीवात्मा ईश्वर के स्वरूप में लीन हो जाता है परंतु सो ईश्वर के बराबर कबी नहि हो सकता केवल ज़प तप योग के प्रभाव सें सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो सकता है॥

प्रश्न० हे भगवन् सिद्ध अवस्था किस को कहते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य अणिमा महिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होनी और इस लोक तथा परलोक के संपूर्ण विषयों के भोगने की स्वतंत्रता होनी जो संकल्प करे सोई सत्य हो जाना यह सब सिद्ध अवस्था के लक्षण हैं परंतु जगत् की उत्पत्ति स्थिति वा नाश करने की शक्ति जीव

को नहिं प्राप्त होती वो तो केवल ईश्वर में ही रहती है ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह जीव इस संसार में क्यों भ्रमण करता रहता है ॥

उत्तर० हे शिष्य वाह्य विषयों में आसक्त हूया अज्ञान के कारण से कर्म वंधनको प्राप्त होकर सर्वदा काल संसार चक्र में भ्रमण करता रहता है॥

प्रश्न० हे भगवन् जीवात्मा की संसारचक्र सें मुक्ति किस सें होती है ॥

उत्तर० हे शिष्य जीव की मुक्ति ब्रह्मज्ञान सें होती है ॥

प्रश्न० हे भगवन् ब्रह्मज्ञान किस को कहते हैं॥

उत्तर० हे शिष्य ब्रह्म जो परमात्मा परमेश्वर है तिस के स्वरूप को यथार्थ जो जानना है उस को ब्रह्मज्ञान कहते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् सो ब्रह्म का स्वरूप किस रीति सें जाना जावे है ॥

उत्तर० हे शिष्य संसार के व्यवहारों सें उप-राम होकर ब्रह्मनिष्ठ गुरु के उपदेश सें और साधु

महात्मा पुरुषों की चिरकालपर्यंत संगत करने से तथा एकांत में बैठकर निरंतर परमात्मा का ध्यान करने से ब्रह्म के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होवे है॥

प्रश्न० हे भगवन् ब्रह्म का स्वरूप तो अति सूक्ष्म निरंजन निराकार है उस का ज्ञान किस रीति से हो सके है ॥

उत्तर० हे शिष्य पहले जब अपने शरीर में आत्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होवे है तो पीछे ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान आप ही हो जावे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् एक शरीर में आत्मा के ज्ञान से सर्व व्यापक ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान कैसे हो जावे है ॥

उत्तर० हे शिष्य जैसे समुद्र के एक चुलु पानी के ज्ञान से सारे समुद्र के खारे पानी का ज्ञान हो जावे है तैसे ही एक शरीर में चेतन आत्मा का ज्ञान होने से सर्व ब्रह्मांड में व्यापक चेतन स्वरूप ब्रह्म का ज्ञान हो जावे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् चेतन आत्मा तो शरीर के अंदर रहता है उस का बाहिर से प्रत्यक्ष अनुभव कैसे हो सकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य जैसे वृक्ष की शाखा हिलने से वायु का प्रत्यक्ष अनुभव होवे है तैसे ही शरीर के हाथ पैर हिलने से वा बोलने चलने से सब मनुष्य पशु पक्षि आदि शरीरोंमें चेतन स्वरूप आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव होवे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् वाहिर से तो सब स्थूल शरीर ही नजर में आते हैं चेतन तो नजर में नही आता तो उस का प्रत्यक्ष अनुभव कैसे समझना चहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य यद्यपि केवल स्थूल दृष्टि से चेतन आत्मा का स्वरूप नजर नही आसक्ता परंतु ज्ञानरूपी नेत्रद्वारा विचार युक्त बुद्धि से अनुभव में आय जाता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस में क्या प्रमाण है कि ब्रह्म का स्वरूप प्रत्यक्ष अनुभव में आता है ॥

उत्तर० हे शिष्य कठउपनिषद् में लिखा है (दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः) अर्थ० परमात्मा का स्वरूप विचार से सूक्ष्म हूई बुद्धि से सूक्ष्मदर्शी ज्ञानी पुरुषों करके देखा जावे है इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् शरीरों में चेतनपणा तो जीवात्मा का है और सो जीव ब्रह्म से जुदा है तो उस से ब्रह्म का स्वरूप कैसे जाना जावे है ॥

उत्तर० हे शिष्य जैसे जल का कलश और समुद्र उपाधि भेद से जुदा जुदा दीखते हैं परंतु विचार से देखने से उन दोनों में एक ही वस्तु प्रतीत होती है तैसे ही जीव ब्रह्म की बाबत भी समझ लेना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् ब्रह्म तो सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्व व्यापक है उस के बराबर अल्पज्ञ अल्पशक्ति वाला तुच्छ जीवात्मा कैसे हो सकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य जैसे दीपक सूरज के बराबर नही हो सकता परंतु तिन दोनो में वस्तु तो एक ही है तैसे ही संपूर्ण चराचर जीवों में एक ब्रह्म का ही चेतन स्वरूप निश्चय करना चहिये तथा सर्व जगत् को भी ब्रह्म स्वरूप ही ज़ानना चहिये॥

प्रश्न० हे भगवन् यह जगत् तो स्थूल जडरूप नाशवान् प्रतीत होता है सो ब्रह्मरूप कैसे हो सकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य जो कार्य वस्तु जिस कारण सें उत्पन्न होती है सो उस कारण से जुदा नहि होती जैसे वस्त्र कपास से बनता है तो कपास से जुदा नहि होता सो यह जगत् ब्रह्म से उत्पन्न हूया है सो ब्रह्म से जुदा नहि है ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह जगत् तो नीच ऊंच भला बुरा दीखता है सो यह ब्रह्मरूप कैसे हो सकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य अज्ञानी जीवों की दृष्टि में यह जगत् नीच ऊंच भला बुरा दीखता है परंतु यथार्थ ज्ञान की दृष्टि सें सब एकरूप ही नजर आता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह जगत् तो प्रत्यक्ष जड-रूप प्रतीत होता है और ब्रह्म चेतनस्वरूप है सो जगत् ब्रह्मरूप है यह कैसे निश्चय होवे ॥

उत्तर० हे शिष्य सब चराचर जगत् कोई प-दार्थ जड नहि है क्योंकि चेतन सें उत्पन्न हूया है सो चेतन रूप ही है केवल ईश्वर के संकल्प सें व्यवहार के लिये जीवों को जगत् जडरूप दीखता है वास्तव में जड नहि है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जो वास्तव में सब जगत् चेतन रूप है तो फिर नदी पर्वत वन आदि जड वा स्थूल पदार्थ क्यों दीखते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य जो अज्ञानी लोक इस जगत् के मूलकारण को नहि जानते हैं उन को यह जगत् जड वा स्थूल दीखता है परंतु ब्रह्मज्ञानी लोकों को यह संपूर्ण जगत् केवल चेतन्न ब्रह्मरूप ही नजर आता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस जगत् में तो मल सूत्र आदि गंदे पदार्थ और सूकर भंगी चमार आदि नीच जीव भी हैं तो जो जगत् ब्रह्मरूप है तो फिर ब्रह्म भी गंदा और नीच होवेगा ॥

उत्तर० हे शिष्य यद्यपि यह संपूर्ण भले बुरे नीच ऊंच स्वच्छ गंदे पदार्थ ब्रह्म के बीच में ही हैं परंतु यह सर्व पदार्थ कल्पना मात्र झूठे प्रतीति मात्र होने सें ब्रह्म को लिपायमान वा दूषित नहि कर सकते जैसे स्वप्न के कल्पित सब पदार्थ अपने जीवात्मा के संकल्प के अंदर होते हैं परंतु उन पदार्थों सें जीवात्मा का कुछ संबंध नहि होता है तैसे ही ब्रह्म संपूर्ण जगत्‌रूप हूया भी

जगत् सें असंग निर्लेप जानना चहिये किंच जीवों को तो अज्ञान के कारण सें स्वप्ने में कल्पित पदार्थों सें कुछ डर भय क्लेश भी प्रतीत होता है परंतु ब्रह्म तो नित्य ज्ञानस्वरूप है इस लिये उस को इन जगत् के कल्पित पदार्थों का कुछ भी संबंध वा लेप नहि होता सो सर्वदा काल शुद्ध निर्लेप रहता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जब संपूर्ण जगत् ब्रह्मरूप हूया और सब जीव भी ब्रह्मरूप हूये सो जीव तो दुःखी और क्लेशयुक्त देखने सें आते हैं तो ब्रह्म को आनंदस्वरूप कैसे समझना चहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य यह वार्ता पहले कह आये हैं कि यह संपूर्ण जगत् ईश्वर के संकल्प से उत्पन्न होवे है सो संकलपरूप ही है दूसरा कोई स्थूल वा जड पदार्थ नहि है सब चेतन स्वरूप शुद्ध चिदाकाश रूप है परंतु ईश्वर के इस प्रकारके संकल्प सें जीवों को व्यवहार के लिये स्थूल वा जड रूप प्रतीत होता है और जीव भी ईश्वर के संकल्प से रचे हुये होने से ईश्वररूप ही है परंतु जीवों के सुख दुःख क्लेश सें ईश्वर सुखी दुःखी वा

क्लेशयुक्त नहि होता है जैसे स्वप्न में अपने संकल्प सें रचे हुये पुरुष का सिर कट जावे तो अपना सिर नहिं कट जाता है तैसे ही ईश्वर के कल्पित जीवों के सुख दुःख सें ईश्वर को संबंध नहि होता इस लिये ब्रह्म सदा शुद्ध आनंदस्वरूप ही है ऐसा निश्चय करना योग्य है क्योंकि जीव और जगत् के पदार्थ जो सत्य होवें तो उन सें ब्रह्म का संबंध होवे परंतु जब यह संपूर्ण जीव वा पदार्थ ब्रह्म की कल्पना मात्र हैं तो इन से ब्रह्म का किंचित् मात्र भी संबंध नहि है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जब संपूर्ण जगत् ब्रह्म के संकल्प सें बना हूया है तो यह ब्रह्मरूप किस रीति सें हूया ॥

उत्तर० हे शिष्य संपूर्ण जगत् संकल्प सें उत्पन्न होने सें संकल्प रूप हूया और वो संकल्प ब्रह्म से अभिन्न होने सें ब्रह्म रूप हूया तो संपूर्ण जगत् ब्रह्मरूप ही सिद्ध हूया इस रीति सें जगत् को ब्रह्मरूप जानना वा देखना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् ब्रह्म का संकल्प तो चेतन

वा निराकार रूप है तो उस सें जड वा स्थूल रूप जगत् कैसे उत्पन्न होवे है ॥

उत्तर० हे शिष्य येही तो ईश्वर के संकल्प की अद्भुत शक्ति है कि निर्मल निराकार शुद्ध चिदाकाश भी जगत् जीवों को जड स्थूलरूप दिखाई देता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् यह जगत् शुद्ध चिदाकाश रूप कभी जीवों को भी दीख सकता है कि नहि॥

उत्तर० हे शिष्य जो पुरुष वेदांतशास्त्र के श्रवणपूर्वक यम नियम आदि योग के अंगों की साधना द्वारा निर्विकल्प समाधि का अभ्यास करता है उस को अभ्यास के दृढ होने सें पीछे यह जगत् केवल चिदाकाश शुद्ध निर्मल ब्रह्मरूप दिखाई देता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् उस अवस्था सें फिर जगत् के पदार्थ भान होते हैं कि नहि ॥

उत्तर० हे शिष्य यद्यपि व्युत्थान काल सें योगी को भी बाहिर के पदार्थ व्यवहार की दृष्टि सें दीखते तो हैं परंतु वो उस को सर्व कल्पना

मात्र दीखते हैं सत्य नहि दीखते जैसे वस्त्र में नाना प्रकार के चित्र खिचे होते हैं और वो बुद्धिमान पुरुष को केवल वस्त्र रूपही दीखते हैं तैसे ही योगी को यह संपूर्ण जगत् ब्रह्मरूप ही दीखता है इसी को पूर्ण ब्रह्मज्ञान कहते हैं और इसी के दृढ होने से जीवको ब्रह्मस्वरूप कैवल्य मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥

प्रश्न० हे भगवन् निर्विकल्पसमाधिका किस प्रकार से अभ्यास होवे है ॥

उत्तर० हे शिष्य योगाभ्यास का दो प्रकार का मार्ग है एक तो हठयोग और दूसरा राजयोग सो हठयोग का प्रकार तो पीछे योग के आठ अंगो में निरूपण कर आये हैं और राजयोग के खेचरीमुद्रा नादश्रवण और त्राटक यह तीन मुख्य साधन हैं तिन में खेचरी मुद्रा की यह रीति है कि प्रथम जिह्वा के नीचे की नाडी को धीरे धीरे छेदन करना चहिये जब दो तीन मास में छेदन ठीक हो जावे तो पीछे जिह्वा को खेंच खेंच कर चार पांच मास तक लंबी करने का अभ्यास करना चहिये सो जिस काल में जिह्वा

बाहिर से नाक के अग्रभाग को स्पर्श करने लग जावे तो पीछे मुख में उलटा कर अंगुलियोंसे दबा कर के घंटिकासे पीछे तालुके छेद में प्रवेश करने का अभ्यास करना चहिये सो जब जिह्वा तालु में प्रवेश कर जावे तो खेचरी मुद्रा ठीक हो जाती है पीछे उस का अभ्यास करना चहिये सो खेचरी मुद्रा के अभ्यास की यह रीति है कि प्रातः काल तथा सायंकाल दोनों वकत प्रथम थोडा काल प्राणायाम करके पीछे जिह्वा को उलटा कर तालु में प्रवेश करके नेत्र बंद करके भ्रूमध्य में चित्तवृत्ति का लक्ष्य रखकर शांतचित्त हो कर बैठ जाना चहिये तो कुछ कालतक नित्य पथ्यभोजनपूर्वक अभ्यास करने से चित्तवृत्ति लीन होने लग जाती है और अंत में योग निद्रा होकर निर्विकल्प समाधि हो जाती है। और नादश्रवण करने की यह रीति है कि प्रथम पथ्य भोजन करते हूये तीन चार मासतक प्राणायाम का अभ्यास करना चहिये सो जब तीन चार मिंटतक प्राण रुकने लग जावे तो पीछे एकांत स्थान में स्वस्तिकासनसें बैठ कर दोनों भुजायों के नीचे

लकडीका आसारखकर दोनों तर्जनी अंगुलियों से दोनों कान के छिद्र वंद कर के दहने कान की तरफ नादकी ध्वनि को श्रवण करना चहिये परंतु कानों को जोर से वंद नही करना चहिये तथा एकदम वहुत देरतक वंद भी नही रखना चहिये थोडी थोडी देर वीच वीच में दोनों अंगुलियां हटा हटा कर फिर वंद करना चहिये क्योंकि एकदम देरतक जोर से वंद रखने से कानोंमें दरद हो जाता है इस लिये धीरे धीरे अभ्यास वढाना चहिये इस प्रकार सायं तथा प्रातःकाल दोनों वक्त नित्य अभ्यास करने से योगी को प्रथम मिले हूये तथा जुदा जुदा नाद सुनने में आते हैं और फिर वहुत कालतक निरंतर अभ्यास करने से योगी के शरीर में रोमांच और आनंद का अनुभव होने लगता है तथा मुख में अमृत का स्वाद आने लगता है और फिर अंत में योग निद्रा होकर निर्विकल्प समाधि हो जाती है । तथा त्राटक करने की यह विधि है कि प्रथम कुछ कालतक पथ्यभोजनपूर्वक प्राणायाम का अभ्यास कर के पीछे एकांत स्थान में आसन जमा कर अपने

सामने सुपेद भीतपर स्याही से एक गोल चिह्न करके उस मे धीरे धीरे दृष्टि जमाने का अभ्यास करना चहिये सो कुछ काल अभ्यास करते करते दृष्टि थकित होकर अंतर्मुख भई लीन हो जाती है फिर अभ्यास के वढने से ज्यादा देरतक वृत्ति लीन होने से निर्विकल्प समाधि हो जावे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् केवल वेदांत शास्त्र के विचार से जो पुरुष जगत् को ब्रह्म रूप जानते हैं तिन सें और निर्विकल्प समाधि के अभ्यास करनेवाले ब्रह्मवेत्ता योगी में क्या फरक होता है ॥

उत्तर० हे शिष्य जिस वस्तु का योगी लोक ध्यान से अनुभव करते हैं उसी वस्तु का केवल ज्ञानी लोक शास्त्र सें निश्चय करते हैं उस वस्तु में कुछ भेद नहि है केवल तिन के अनुभव में फरक होता है परंतु जो केवल ज्ञानी लोक वेदांतशास्त्र पर पूर्ण श्रद्धा विश्वास रख कर ब्रह्मवेत्ता गुरु के मुख से श्रवण करके निरंतर उस का एकांत सें मनन ध्यान करके ब्रह्म के स्वरूप को अपने अनुभव मे लाते हैं तो उन का ज्ञान भी योगियों के बरावरही समझना चहिये ॥

प्रश्न० हे भगवन् आपने कहाकि योगियों के अनुभव में फरक होता है सो क्या फरक होता है॥

उत्तर० हे शिष्य योगियों को ध्यान काल में परमात्मा का प्रकाश स्वरूप दिव्य दृष्टि से विशेष रूप से दिखाई देता है और केवल ज्ञानियों को ज्ञान रूपी नेत्र से सामान्य रूप से अनुभव में आता है इतना फरक होता है परंतु दोनोंका लक्ष्य वस्तु एक होने से दोनों को मोक्ष रूप फल की बराबर प्राप्ति होती है किंतु योगियों को सिद्धि विशेष होती है और जीवन्मुक्ति का आनंद भी विशेष होता है इस लिये ब्रह्मज्ञान और योग दोनों का साथ अभ्यास होवे तो बहुत श्रेष्ठ है॥

प्रश्न० हे भगवन् पूर्ण ब्रह्मज्ञान होने का क्या लक्षण है॥

प्रश्न० हे शिष्य जिस काल में यह संपूर्ण चराचर जगत् एक ब्रह्मस्वरूप ही प्रतीत होने लग जावे और मन से सब द्वैतभाव मिट जावे तो तब जानना चहिये कि पूर्ण ब्रह्मज्ञान होगया॥

प्रश्न० हे भगवन् कोई ज्ञानवान् पुरुषों में भी राग द्वेष देखने में आते हैं तो यह कैसे जाना जावे कि उन के द्वैतभाव नही हैं॥

उत्तर० हे शिष्य ज्ञान का निश्चय तो मन का धर्म है और बाहिर शरीर की चेष्टा प्रारब्ध कर्म से होवे है इस लिये कोई ज्ञानी विरक्तपणे में रहते हैं और कोई व्यवहार प्रवृत्ति में पडे हूये दीखते हैं परंतु अंदर से तिन सब का निश्चय एक ही होवे है सो केवल कबी ऊपर से उन में राग द्वेष देखने में आवे है परंतु अंदर से वह राग द्वेष से रहित होते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् ब्रह्मज्ञान से जगत् के मिथ्यापणे का निश्चय हो जावे है तो फिर ज्ञानी पुरुष की व्यवहार में प्रवृत्ति कैसे हो सके है ॥

उत्तर० हे शिष्य प्रारब्ध कर्म तीन प्रकार का होवे है इच्छा अनिच्छा और परेच्छा सो ज्ञानी पुरुष की प्रवृत्ति इच्छा से तो विशेष नही होवे है किंतु अनिच्छा और परेच्छा से होवे है अर्थात् अपने कुटुंबी वा शिष्य सेवकों की इच्छा से अथवा दैवयोग समागम से ज्ञानी पुरुष की व्यवहार में प्रवृत्ति हो जावे है ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो फिर व्यवहार प्रवृत्ति से ब्रह्मज्ञान में कुछ हानि होती है कि नही ॥

उत्तर० हे शिष्य जो केवल वेदांत श्रवण मात्र से ज्ञान होवे है वो तो व्यवहार प्रवृत्ति में दब जाता है परंतु जो पहले सर्व साधनों सहित श्रवण मनन निदिध्यासन पूर्वक दृढ ज्ञान होवे है उस का लोप कबी नही हो सकता क्योंकि पूर्ण ज्ञानी पुरुष को निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों जगा एकरस पूर्ण ब्रह्म ही प्रतीत होता है ॥

प्रश्न० हे भगवन् तो फिर कोई लोक प्रवृत्तिवाले ज्ञानी पुरुष की निंदा क्यों करते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य साधारण संसारी लोकों को ज्ञानी पुरुष के अंदरूनी निश्चय का बोध नही होता है इस लिये वो केवल ऊपर से शरीर की चेष्टा देखकर निंदा करने लग जाते हैं परंतु विचारशील जिज्ञासु पुरुष निंदा नही करते वो उन के ज्ञानरूप उत्तम गुण को ग्रहण करते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् साधु महात्मायों में ही ठीक ब्रह्मज्ञान होता है कि गृहस्थाश्रम में भी हो सकता है ॥

उत्तर० हे शिष्य ऐसा कुछ नियम नही है कि गृहस्थाश्रम में ब्रह्मज्ञान नही होता क्योंकि जो

पुरुष जिस बात का अभ्यास करता है वो उस को अवश्य प्राप्त हो सकता है सो जो गृहस्थी लोक कुछ काल व्यवहार सें अवकाश लेकर नित्यं प्रति ईश्वराराधन और साधु महात्मायों का सत्संग तथा वेदांत शास्त्र का श्रवण मनन करते हैं और असंग रहकर सत्य धर्म से जगत् का व्यवहार करते हैं तो उन को भी ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है और वो भी साधु महात्मायों की न्यांई अंत में कैवल्य मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् कैवल्य मोक्ष किस को कहते हैं ॥

उत्तर० हे शिष्य जिस काल में यह जीवात्मा जन्म मरण आदि संसार बंधनों सें मुक्त हुया परमात्मा के स्वरूप में लीन हो जाता है उस को कैवल्य मोक्ष कहते हैं ॥

प्रश्न० हे भगवन् कैवल्य मोक्ष को प्राप्त हुया जीव फिर कवी संसार में लोट कर आता है कि नहि ॥

उत्तर० हे शिष्य कैवल्य मोक्ष को प्राप्त हो कर फिर जीव कवी लोट कर नहि आता है क्यों

कि अगर साक्षात् परब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त हो कर भी फिर जीव संसार बंधन में पड जावे तो फिर मोक्ष गति का क्या महत्त्व हूया वो तो स्वर्गलोक जैसी बात हूई कि पुण्य क्षीण हो गये तो फिर गिर पडे वो मुक्ति काहे की हूई? ॥

प्रश्न० हे भगवन् इस में क्या प्रमाण है कि मोक्ष गति सें जीव फिर लोट कर नहि आता ॥

उत्तर० हे शिष्य कठ उपनिषत् में लिखा है (यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः सतु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते) अर्थ० जो पुरुष ब्रह्मज्ञानवान् स्थिर मनवाला पवित्र आचारवाला होता है वो उस पद को प्राप्त होता है जहां सें फिर लोट कर जन्म नहि पाता है इति तथा भगवत्गीता के पंदरवे अध्याय में भी लिखा है (यद्गत्वा न निवर्त्तंते तद्धाम परमं मम) अर्थ० जिस को प्राप्त हो कर ज्ञानी पुरुष फिर लोट कर नहि आते हैं सो मेरा परमधाम है इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् जो मोक्ष धाम में गये हुये फिर लोट कर नहि आते तो फिर धीरे धीरे मोक्ष

होने से किसी समय में सबी जीव समाप्त हो जावेंगें संसार में कोई जीव नहि रहेगा ॥

उत्तर० हे शिष्य जीवों की कुछ गिणती नही है जो मोक्ष जाने सें समाप्त हो जावेंगे जीव तो अनंत हैं क्योंकि ब्रह्म अनंत है तो उस के अंश रूप जीव भी अनंत ही हैं जो जीवों का अंत आय जावे तो फिर किसी दिन ब्रह्म का भी अंत आय जावेगा और (सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म) इस वेद वाक्य में ब्रह्म का स्वरूप अनंत कथन किया है और उस के अंश रूप जीव भी अनंत हैं इस लिये मोक्ष गति जाने सें जीवों की समाप्ति नहि हो सकती है ॥

प्रश्न० हे भगवन् जीव अनंत हैं इस में क्या प्रमाण है ॥

उत्तर० हे शिष्य श्वेताश्वतर उपनिषत् में लिखा है (बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः सचानंत्याय कल्पते) अर्थ० सिर के वाल के अग्रभाग के सौ भाग कर के तिस मे सें एक के फिर सौ भाग करने सें जितना बारीक होता है उतना सूक्ष्म जीव का स्वरूप है और सो जीव अनंत हैं इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् अनंत होने पर भी धीरे धीरे कमती होने से कवी तो जीवों का अंत आय जावेगा ॥

उत्तर० हे शिष्य इस जगत् का आदि मे कब से पारंभ हूया है और फिर कब इस का आखीर में अंत होवेगा इस बात का कोई भी ऋषि मुनि मनुष्य वा देवता निर्णय नहि कर सकता और न अवी तक किसी ने किया है और जिस वस्तु का कवी अंत नहि होवे उस को अनंत कहते हैं जैसे कोई पुरुष पूर्वदिशा से पश्चिम की तरफ़ निरंतर दौडता हूया आकाश का अंत लेना चाहे तो कवी नहि ले सकता तो ब्रह्म तो आकाश का भी कारण है तो उस का अंत आना कवी संभव नहि हो सकता सो जैसे अग्नि से चिनगारियां निकलती रहती हैं तैसे ही ब्रह्म से जीव उत्पन्न होते रहते हैं सो उन का अंत कवी नहि हो सकता इस लिये मोक्ष गति जाने से जीवों की समाप्ति नहि हो सकती है ऐसा जानना चहिये इति ॥

प्रश्न० हे भगवन् आप के अमृतरूपी युक्तियुक्त वचनों सें मेरे मनके सर्व संशय निवृत्त हो

गये हैं अब मुझ को और कोई बात पूछने वा जानने योग्य अवशेष नहि रही अब कृपा करके यह आज्ञा दीजिये कि शरीर के रहते पर्यंत मुझ को वि ' प्रकार सें आचरण करना चहिये ॥

उत्तर० हे शिष्य संसार के व्यवहारों का संकोच क 'के सर्वदा काल संत महात्मा पुरुषों का संग और ईश्वर का आराधन ध्यान करता हूया सर्वसें असंग होकर रहना चहिये तथा सर्व जगत् और अपने को ब्रह्म सें अभिन्न जानकर एक अद्वितीय ब्रह्म का निश्चय करके सर्व जीवोंसें मित्रभाव से वर्तना चहिये इति ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्वामिब्रह्मानंद विरचि ' प्रश्नोतरी समाप्ता ॥

नेत्राश्वनंदचन्द्राब्दे ब्रह्मानंदेन योगिना ।
कृतो लोकोपकारार्थं ग्रंथोऽयं पुष्कराश्रमे ॥

इति शम् ॥
